अहिंसा की विजय

(ग्रन्थ - ६)

अनुवादिका

प्रथम गणिनी १०५ आर्यिकारत्न विदूषी

सम्यग्ज्ञान शिरोमणी सिद्धान्त विशारद

धर्म प्रभाविका

श्री विजयामती माताजी

(श्री 108 आचार्य महावीर कीर्तिजी परम्पराय)

नाथूलाल जैन "टोंकवाला"
प्रबन्ध सम्पादक

महेन्द्रकुमार जैन "बड़जात्या"
सम्पादक

प्रकाशक

श्री दिगम्बर जैन विजया ग्रन्थ प्रकाशन समिति

कार्यालय

जैन भगवती भवन

114, शिल्प कालोनी, झोटवाड़ा, जयपुर-302012

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण–1001 प्रतियाँ

प्रकाशक वर्ष–1991

मूल्य – रुपये 10/– (डाक व्यय सहित)/स्वाध्याय

आर्थिक सहयोग–जैन समाज अकलूज (महाराष्ट्र)

चित्रकार – बी. एन शुक्ला

प्राप्ति-स्थान—

महेन्द्र कुमार जैन
जैन भगवती भवन
114, शिल्प कालोनी
झोटवाड़ा, जयपुर–302012

मुद्रक : प्रिंटिंग सेन्टर
चूरुकों का रास्ता, चौड़ा रास्ता
जयपुर–302003

दो शब्द

भारत धर्मों का उद्यान है। यहाँ अनेकों धर्मवृक्ष हैं। अपने-अपने पत्र, पुष्प, फलादि का सौन्दर्य है। एक से एक बढ़ कर घटाएँ हैं। कहीं अहिंसा का बिगुल बजता है तो कहीं हिंसा का। दोनों धर्म के नाम पर अपना अपना चमत्कार प्रदर्शित करते हैं। भक्त चक्कर में पड़ जाते हैं। किसे सच्चा समझें ? किसका अनुकरण करें ? किसे अपनायें ? हमारा हित किसमें है ? कल्याणकारी धर्म कौन हो सकता है ? इत्यादि अनेकों प्रश्न, मणिमाला के मोतियों की भाँति सामने आते हैं। इन्हीं प्रश्नों का समाधान इस लघु कथानक में अत्यन्त सुस्पष्ट किया है। सरलता से भोले, अज्ञानी मानव को सत्पथ पर आने का प्रयास है। स्वार्थी पण्डे-पुजारी किस प्रकार धर्म के नाम पर कपट जाल बिछा कर बेचारे भोले जीवों को फँसा लेते हैं और मिथ्यामार्ग का पोषण कर उन्हें उभयलोक भ्रष्ट कर देते हैं। इसका चित्रण बड़ा ही सजीव और स्वाभाविक हुआ है। धनान्ध राजा-महाराजा भी विवेकशून्य हो कुमार्गी बन जाते हैं। सन्तति व्यामोह से सच्चे धर्म का परित्याग कर देते हैं। अन्धविश्वास से आत्मपतन कर बैठते हैं। यही नहीं स्वयं कर्त्तव्यच्युत हो प्रजा को भी धर्म कर्म विहीन कर कुमार्गरत कर देते हैं। इस सम्बन्ध में पद्मनाभ नृपति और धूर्त माणिकदेव पिरोहित एवं उसका चेला नरसिंह का चरित्र इसमें इतने स्वाभाविक ढंग से निरूपित हैं कि पाठकगण एकाग्र हो पूर्वापर घटना को जानने के लिए व्यग्र हो उठेंगे। हिंसा की अधीष्ठात्री देवी, काली और उनके पूजक दोनों का भंडाफोड इसमें किया गया है। यह पुस्तक धार्मिक अन्धविश्वासों का अन्त करने में सक्षम है। साथ ही सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन भी करने में प्रबल प्रमाण उपस्थित करती है।

धर्म का संरक्षण निर्ग्रन्थ वीतरागी साधु ही कर सकते हैं। जो स्वयं वीतरागी होगा वही वीतरागता की छाप अन्य भक्तों पर डाल सकता है। स्वयं अहिंसक हिंस्र प्राणियों को भी अहिंसक बना लेता है। आत्मबलि ही

अध्यात्म का रहस्य पाता है। अहिंसा व प्रेम का शासन ही अमर होता है। ज्ञानी की दृष्टि निराली होती है। क्षमा का प्रभुत्व और अलौकिक प्रतिभा का प्रकाश होता है। आचार्य श्री अमरकीर्तिजी का त्याग' तपस्या और तत्वज्ञान बेजोड़ है। उनके अद्वितीय प्रभाव से १५ वर्षों का जमा हिंसाकाण्ड किस प्रकार धराशायी हो गया—यह अहिंसा धर्म का माहात्म्य है। इससे विदित होता है कि आग से आग नहीं बुझती, क्रोध से क्रोध नहीं मिटता, धूर्तता से धूर्तता नहीं नष्ट होती अपितु पानी से आग, क्षमा से कोप सरलता से कपट पर विजय प्राप्त होती है। इसी प्रकार धर्म से अधर्म का संहार होता है। तत्त्व का परिज्ञान अज्ञान का नाश करता है। तप और त्याग में अलौकिक शक्ति है। तप का तेज रवि किरणों की भाँति भक्तजनों के हृदयांगण में प्रसारित मिथ्या तिमिर को पल भर में छिन्न-भिन्न कर डालता है। इसका प्रमाण इस साधु चित्रण में पाठकों को स्वयं प्राप्त होगा। इसको मैंने मराठी पुस्तक "अहिंसा चा विजय" का अनुवाद किया है। मात्र भाषा-रूपान्तर मेरा है लिखा नहीं। केवल उद्देश्य मात्र धर्म का उद्घाटन करना है, उसमें इसे सहायक समझा और पाठकों के सामने उपस्थित किया।

इसका प्रकाशन श्री दिगम्बर जैन विजया ग्रन्थ प्रकाशन समिति झोटवाड़ा जयपुर द्वारा हो रहा है। यह संस्था इसी प्रकार धर्मप्रचार और जिनागम का प्रसार करती रहे। इसके कार्यकर्ता, सम्पादक महोदय महेन्द्र कुमारजी बड़जात्या, नाथूलालजी प्र. सम्पादक आदि सभी को हमारा पूर्ण आशीर्वाद है कि वे इसी प्रकार जिनवाणी प्रचार कर ज्ञानगरिमा बढ़ाते रहें। धनराशि देकर प्रकाशित कराने वाले भी सम्यग्ज्ञान प्राप्त करें।

प्रथम गणिनी १०५ आर्यिका विजयामती

सम्पादकीय

श्री चन्द्रप्रभु जिनेन्द्राय नमः

परमपूज्य समाधि सम्राट चारित्र चक्रवर्ती १०८ आचार्य श्री आदिसागरजी महाराज (अंकलीकर) समाधि सम्राट बहुभाषी तीर्थभक्त शिरोमणि १०५ आचार्य श्री महावीरकीर्तिजी महाराज, निमित्त ज्ञानशिरोमणि १०८ आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज, चारित्र चूडामणि अध्यात्म बालयोगी कठोर तपस्वी १०८ आचार्य श्री सन्मति सागरजी महाराज वात्सल्य रत्नाकर बालब्रह्मचारी १०८ गणधराचार्य श्री कुन्थुसागरजी महाराज, धर्मप्रभाविका विदुषी सम्यग्ज्ञान शिरोमणि १०५ प्रथम गणिनी आर्यिका श्री विजयामती माताजी एवं लोक के समस्त आचार्य, उपाध्याय, मुनि, आर्यिका माताजी, क्षुल्लक, क्षुल्लिका माताजी तथा तपस्वी सभी जैन साधुओं के चरण कमलों में भाव श्रद्धा भक्ति सहित नतमस्तक त्रिवार नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु कर समिति द्वारा प्रकाशित इस नवम् ग्रन्थ "अहिंसा की विजय" के प्रकाशन में दो शब्द पाठकों के समक्ष निवेदन करता हूं।

इस शताब्दी के प्रथम चारित्र चक्रवर्ती आचार्य १०८ श्री आदिसागर महाराज हुए जिन्होंने कठोर तपस्या के साथ साथ जैनधर्म के आध्यात्मिक सन्देश और सत्यधर्म का प्रचार प्रसार किया उन्होंने अपनी परम्परा में आचार्यपद श्री महावीर कीर्तिजी महाराज को दिया। प. पू. महावीर कीर्तिजी महाराज ने समाधि पूर्व आचार्यपद प. पूज्य श्री सन्मति सागरजी महाराज को प्रदान किया जो कि कठिन तपस्या में अपने बाबा गुरु के साक्षात प्रतिबिम्ब स्वरूप हैं। आचार्य श्री महावीरकीर्तिजी महाराज ने गणधर पद परमपूज्य श्री कुन्थुसागरजी महाराज एवं गणिनी पद परमपूज्य श्री विजयामति माताजी को प्रदान किया। दोनों ही की लेखनी निरन्तर चल रही है तथा जैनसाहित्य के प्रचार एवं प्रसार में अपने बाबा गुरु की परम्परा को कायम रखे हुए हैं।

परमपूज्य ग. आ. १०५ श्री विजयामति माताजी जिधर भी विहार करती हैं उनकी निगाह जिनवाणी भण्डार की ओर लगी रहती है जैसे ही कोई अप्रकाशित ग्रन्थ उनके हाथ लगता है उनकी लेखनी मचल उठती है। अभी उन्होंने दक्षिण भारत के कई ग्रन्थों का हिन्दी रूपान्तर कर जैन धर्मावलम्बियों को हृदयंगम भाषा में उपलब्ध कराया है। प्रस्तुत ग्रन्थ भी मराठी भाषा से हिन्दी रूपान्तर लिखा है। इसका प्रकाशन ऐसे समय में

हो रहा है जबकि चारों तरफ नरहिंसा का ताण्डव मचा हुआ है। स्वतन्त्र भारत में अब भी बलिप्रथा कई स्थानों में प्रचलित है। हिंसा का मूलकारण स्वहित या स्वार्थ है, यदि हम परहित के लिए कार्य करें दूसरे के दुःख को अपना दुःख माने तो हिंसा स्वयं समाप्त होती नजर आयेगी। पशुबलि प्रथा मांस भक्षियों द्वारा अपने स्वार्थ के लिए चलाई गई प्रथा है इसमें कोई धर्म नहीं होता, उससे किसी का कोई कल्याण संभव नहीं है इसका पूर्ण विश्लेषण इस कथा ग्रन्थ के माध्यम से सभी को अवगत होगा।

समिति द्वारा प्रकाशित यह नवम् ग्रन्थ पाठकों को सौंपते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है, अब तक के प्रकाशित ग्रन्थों की सभी आचार्य, विद्वान पण्डितों एवं जैन समाचार पत्रों ने भूरि भूरि प्रशंसा कर हमें इस कार्य-पथ पर निरन्तर बढने के लिए प्रोत्साहित किया है। अष्ठम ग्रन्थ "श्री सिद्धचक्र पूजातिशय प्राप्त श्रीपाल चरित्र" की जो समीक्षा हमें प्राप्त हुई वह अद्वितीय है। मैं उन सभी समीक्षकों का आभारी हूं जिन्होंने जैन साहित्य के प्रसार हेतु हमें प्रोत्साहित किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन में श्री दिगम्बर जैन समाज अकलूज (महाराष्ट्र) का धन्यवाद करूंगा जिसने पूर्ण आर्थिक सहयोग प्रदान कर ग्रन्थ का प्रकाशन कराया।

ग्रन्थ में प्रकाशित सभी कथा चित्र एवं मुखपृष्ठ कथा पर आधारित काल्पनिक हैं, इन्हें आकर्षित रूप से बनाने के लिए चित्रकार श्री बी. एन. शुक्ला का भी आभार व्यक्त करता हूँ। ग्रन्थ की सुन्दर एवं शीघ्र छपाई के लिए प्रिंटिंग सेन्टर जयपुर के संचालक धन्यवाद के पात्र हैं।

ग्रन्थ प्रकाशन में समिति के सभी कार्यकर्ताओं विशेषकर श्री नाथूलालजी जैन प्रबन्ध सम्पादक, कु. विजया जैन का आभारी हूं जिन्होंने ग्रन्थ प्रकाशन कार्य में हर प्रकार का सहयोग प्रदान किया।

अन्त में मैं पाठकों से निवेदन करूंगा कि प्रूफरीडिंग में मैंने पूरी सावधानी रखी है फिर भी त्रुटियां रहना असम्भव नहीं कहा जा सकता अतः मेरा अनुरोध है कि त्रुटियों को शुद्ध कर कथा का आनन्द ले तथा प्रकाशन कार्य में रही त्रुटियों से हमें अवगत करायें ताकि भविष्य में उनका सुधार किया जा सके। पुनः लोक के समस्त पूज्य गुरुवर, आचार्यों, साधुओं एवं साध्वीयों के चरण कमलों में सहस्त्र बार नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु।

गुरुभक्त :

महेन्द्रकुमार जैन "बडजात्या"

श्रद्धा सुमन

श्रद्धा सुमन की कलम लेकर मैं भक्ति का लिखूँ दर्पण ।
कविता की पंक्तियों में गुण सौरभ का सुगठन कर ।।
भव्य भ्रमर से गुंजित और, सिद्धजन से परिसेवित ।
माँ विजयमती का गुण चित्राङ्कन शिष्यों को मनभावक हो ।।१।।

गुण रत्न की आभा से विलसित, मुक्ति पथ दिग्दर्शक हो ।
वैराग्य भाव की परिपोषक, संसार भ्रमण की रोधक हो ।।
चिद् विलास की परमहंस, समता गागर रत्नाकर हो ।
मैं अल्प बुद्धि क्या गुण गाऊँ,तुम भव्य जन उद्धारक ।।२।।

ध्यान विभाकर, कृपासुधाकर, धर्म ध्वज उन्नायक हो ।
आर्षमार्ग की परिरक्षक, तुम अनेकान्त प्रचारक हो ।।
तुम स्याद्वाद की उत्थापक, अनुयोग चार दर्शावत हो ।
कर्म शत्रु को विफलकार, वैराग्य कवच पहनावत हो ।।३।।

प्रथमानुयोग में रचपचकर भव्य जनो ! जीना सीखो ।
चरणानुयोग का सुख नित्र ले, कर्म भूमि का भेद करो ।।
करणानुयोग की तह में घुसकर, कर्मशत्रु की खोज करो ।
ज्ञान वैराग्य का दिव्य शस्त्र ले. मोह शत्रु पर विजय करो ।।४।।

भव्य भवन द्रव्यानुयोग में प्रमुदित हो विश्राम करो ।
अविरल और अव्याबाध अतीन्द्रिय सुख का पान करो ।।
हे वीर भट ! कर्मों के क्षय से दुःख का निर्मूलन होता है ।
शाश्वत सुख की यदि कामना तो वैराग्यकवच पहनो ।।५।।

कर्मों के जय से आत्म प्रभा प्रगटाना अपना लक्ष्य रखो ।
"जयप्रभा" गुरु चरणों में जी, सुख प्रभात को प्राप्त करो ।।

निवेदिका—

क्षु० १०५ जयप्रभा

संघस्थ श्री १०५ ग० आ० विजयामती माताजी

ॐ नमः सिद्धेभ्यो

श्री वीतरागाय नमः, सरस्वतीदेव्यै नमो नमः

परमवीतराग गुरुभ्यो नमः

सर्व कर्म निशेष कर, हुए निकल अविकार ।
नमो सिद्ध परमात्मा, पाऊँ अविचल थान ॥१॥

धर्म अहिंसा परम श्रुत, श्री अरिहंत महान ।
जिन शासन युत नमन हैं, करूँ आत्म रस पान ॥२॥

आचार्य प्रथम इस शतक के, आदिसागर जान ।
शिष्य उन्हीं के परमगुरु, महावीरकीर्ति मुनिराय ॥३॥

विमलसिन्धु आचार्यगुरु, सन्मतिसिन्धु महान ।
इनके चरण सरोज में, करती सतत प्रणाम ॥४॥

'विजय अहिंसा धर्म की,' होवे जग में सार ।
कथा मराठी प्राप्त कर, करती हूँ अनुवाद ॥५॥

"॥ अहिंसा की विजय ॥"

देवी का सन्देश–१

महाराजा पद्मनाभ अपने राजभवन में विराजमान हैं । आराम करने को वहाँ बैठे हैं । उनके हाथ में एक तोते का पिंजरा है । वह शुक पढ़ाया गया था । जो कुछ जैसा उसे शब्दोच्चारण सिखाया गया तदनुसार बोल–बोल कर राजा का मनोरञ्जन करता है । राजा उसके साथ खिलवाड़ करते हुए उसके पिंजरे में स्वयं अपने हाथ से अनार के दाने डाल रहे हैं ।

दोनों ही मौज आनन्द विभोर हैं। इसी समय बाहर से दरवान–नौकर आया और बोला, राजन्! पुरोहित माणिकदेव आये हैं। इस प्रकार सूचना दी। उस नौकर के पीछे–पीछे ही माणिकदेव पुरोहित भी प्रविष्ट हुआ। उसे देखते ही राजा शीघ्र ही सिंहासन से उठ खड़े हो गये। उनका अभिवादन किया। अपने ही पास स्थित आसन पर बैठने की प्रार्थना की। उच्च आसन पर मुस्कुराते हुए शोभित हुए। पुरोहितजी के आसन अलंकृत करने पर राजा भी अपने सिंहासनारूढ हुए। तथा बोले, "क्या आज्ञा है आपकी ?" इस प्रकार कहते हुए उनकी ओर दृष्टि डाली।

ये माणिकदेव एक महान पण्डित हैं। राज पुरोहित तो हैं ही साथ ही समस्त गाँव के–मल्लिपुर के भी ये गुरु हैं। सभी इनका सम्मान करते हैं। बहुत महत्व देते हैं। महाराज पद्मनाभ अपने समस्त राजकाज व घरेलू कार्यों को भी इन्हीं की परामर्शानुसार करते हैं। कुछ कठिन कार्य भी योगायोग से इनकी आज्ञा प्रमाण कार्य करने से सफल हो गये। अतः राजा की श्रद्धाभक्ति भी इनके प्रति प्रगाढ हो गई। यद्यपि महीपति की आयु इस समय ६० वर्ष होगी। माणिकदेव की लगभग ४० वर्ष तो भी उसका चेहरा देखते ही भूपति का मस्तक उसके चरणों में नत हो जाता है। माणिक देव के चेहरे पर रौब है, उसकी स्नायुएँ सुगठित हैं, आँखों में अद्भुत तेज है, आवाज बुलन्द और प्रभावी है। वह भगवा पोषाक पहनता है। सचमुच वह राजगुरु होने के योग्य ही शोभनीय लगता है। उसके रंग–ढंग का असर सभी लोगों पर अनायास पडता है। पद्मनाभ राजा को तो उसने बहुत ही प्रभावित कर लिया था। वह उसके पीछे पागल सा हो गया था; इसी कारण मल्लिपुर के राज्य पर उसका विशेष प्रभाव जम गया था। उसकी शक्ति प्रसार और उत्कर्ष का कारण भी एक अपने ढंग का अनोखा ही था। वह एक ऐतिहासिक घटना थी। घटना इस प्रकार है—

पद्मराजा (पद्मनाभि) इस माणिकदेव का दास बन गया था, यह माणिकदेव पिरोहित काली देवी का भक्त था। परन्तु काली देवी राजा की कुलदेवी नहीं थी, न वह इसे जानता ही था। पन्द्रह वर्ष पहले मल्लिपुर की प्रजा भी इसका नाम भी नहीं जानती थी। इस नगर के समीप एक मन्दार नाम का अत्यन्त रमणीक मनोहर नातिदीर्घ–विशाल पर्वत था उस पर सुमनोज्ञ, रमणीक जिनालय था। जिनालय में बालब्रह्मचारी श्री मल्लिनाथ भगवान का अति सौम्य बिम्ब विराजमान था। प्रतिमा अत्यन्त

आकर्षक एवं वीतराग भावोत्पादक थी। इसी मल्लिनाथ प्रभु के नाम से मल्लिपुर नाम इस नगर को प्राप्त हुआ था। इस प्रकार किंवदन्ति चली आ रही थी। कुछ लोग इसे ही सत्य मानते थे। इस राजघराने के सभी लोग–आबालवृद्ध पहाड़ पर स्थित मल्लिनाथ भगवान की ही भक्ति पूजा करते थे। उस मन्दिर की व्यवस्था के लिए भी राज्य की ओर से पूर्ण व्यवस्था थी। मन्दिर के नाम से जमीनादि दी गई थी। मन्दार पहाड़ यद्यपि छोटा-सा ही था तो भी अपने स्वाभाविक सौन्दर्य से अद्वितीय और आकर्षक था। आकर्षक परम मनोहर जिनालय तो इसका तिलक स्वरूप था। यह सबके आकर्षक का केन्द्र था। यह जिनभवन पर्वत के शिखर पर स्थित था। पहाड़ की तलहटी से कुछ दूर पर मल्लिपुर नगर बसा हुआ था। इसी कारण नगर से सैंकड़ों नर-नारी भक्तजन नियम से प्रतिदिन पहाड़ पर जाते थे और दर्शन, पूजा–भक्ति करते थे। परन्तु यह नियम बराबर चल नहीं सका। इस राज परम्परा के अनुसार पद्मनाभ राजा बचपन से चालीस वर्ष तक बराबर प्रतिदिन दर्शन–पूजन को जाते रहे। परन्तु दैवयोग से उसकी भावना ही विपरीत हो गई। उसने मल्लिनाथ प्रभु के दर्शन ही छोड़ दिये। इसका कारण यह हुआ कि राजा को चार–पाँच सन्तानें हुयीं और सबकी सब मृत्यु का ग्रास हो गई। इससे उसका मन उदास हो गया। सन्तति सुख बिना राज्य सुख उसे तुच्छ और असन्तुष्ट का हेतु लगने लगा। उसके मन में रात–दिन एकमात्र यही टीस लगी रहती कि किसी प्रकार मेरी सन्तान चिरजीवी हो। पांच छः बच्चे हो–हो कर मर गये इसमे उसका धैर्य तो छूट हो गया योग्यायोग्य विवेक भी नष्ट हो गया था। या यूं कहो बुद्धि ही भ्रष्ट हो गई। सारासार विचार छोड़ सन्तान जीवित रहे। इसके लिए अनेकों मिथ्या मार्गों का सेवन करने लगा। नाना कुदेवों की आराधना कर अपने सम्यक्त्व रत्न को खो दिया। अनेक धर्म, देव, मन्त्र-तन्त्र जादू-टोना करते–करते एक दिन एक कालीदेवी का भक्त मिला। उसने राजा से कहा, राजन्, आप पशु बलि देकर काली माता की पूजा–भक्ति करें तो आपकी मनोकामना अवश्य सफल होगी। आज तक राजघराने में इस प्रकार की हिंसा काण्ड–बलिप्रथा जड़मूल से ही नहीं थी। परन्तु स्वार्थान्ध राजा यह भूल गया। सच है "विनाशकाले विपरीत बुद्धि।" उसने उस पापी व्यक्ति के कथनानुसार पशुबलि देना स्वीकार कर लिया। पशुबलि चढ़ाकर राजा ने कालीमाता की पूजा की। कर्म धर्म संयोग की बात है, इस प्रकार देवी को बलि चढ़ाने के बाद पद्मनाभ को कन्यारत्न उत्पन्न हुआ। उसका नाम मृगावति

प्रसिद्ध किया । यह कन्या बच गई । उस काली देवी के पुजारी ने राजा को यह प्रत्यक्ष प्रमाण सरीखा बतला कर बहका लिया । राजा भी निश्चय कर बैठा कि इस देवी पूजा के कारण ही से यह कन्या जीवित रह सकी है । इस समय इस कन्या की उम्र चौदा–पन्द्रह साल की होगी । तभी से राजा देवी का परम भक्त बन गया और सच्चे देव की उपासना छोड़ बैठा । क्योंकि उसका विश्वास दृढ़ हो गया कि कालीदेवी की अनुकम्पा से ही यह कन्या जीवित रह सकी है । अतः प्रत्यक्ष प्रमाण से ही वह देवी का एक निष्ठ भक्त बन बैठा । यही नहीं काली देवी का मन्दिर बना कर प्रतिवर्ष महापूजा करो तो आपको पुत्र हो जायेगा इस शर्त से राजा ने अतिशीघ्र पहाड के ठीक नीचे ही एक सुन्दर मन्दिर बनवा कर काली देवी की स्थापना की । नगर बाहर यह मन्दिर अपने ढंग का निराला ही था । इस प्रकार राजा दिनोंदिन देवी का परम भक्त हो गया । उसी समय से आज तक पन्द्रह वर्षों से राजा कभी भी पहाड पर श्रीमल्लि तीर्थङ्कर के दर्शन को नहीं गया ।

काली माँ का मन्दिर तैयार होने के बाद से ही हर साल महापूजा में हजारों मूक पशुओं की बलि होने लगी । रक्त की धारा बहने लगी । परन्तु राजा की पुत्र प्राप्ति की इच्छा पूर्ण नहीं हुई तो भी उनका काली देवी की भक्ति कम नहीं हुयी । क्योंकि वह स्वयं देवी का दास बना और देवी उसे प्रत्यक्ष हुयी ऐसा दृश्य उसे दिखाया गया । "यथा राजा तथा प्रजा" नीति के अनुसार मल्लिपुर की हजारों जनता देवी की भक्त बन गयी । थोड़े ही दिनों में उस काली देवी का विशेष प्रभाव प्रख्यात हो गया ।

जिस काली भक्त के कहने से महाराजा ने मन्दिर बनवाया था । वह वृद्ध सन्यासी था । अतः स्थापना के कुछ दिन बाद–शीघ्र ही वह मर गया । उसके स्थान पर उसी का शिष्य माणिकदेव उस काली मन्दिर का अधिकारी बना था । राजा से इसे देवी की पूजा करने के लिये भरपूर सामग्री मिलती ही थी । इसके अतिरिक्त अनेकों भावुक भक्त नाना प्रकार के वस्त्रालंकार और पुजापादि चढ़ाते थे । इससे देवी के द्वारा अत्यन्त भरपूर सामग्री मिलने से धूर्त माणिकदेव भी पक्का पण्डा हो गया और राजा भी उसके बढते प्रभाव से देवी की महिमा समझ माणिकदेव पर लट्टू हो गया, सामान्य लोग उसे राजगुरु ही समझने लगे ।

अब क्या था, माणिकदेव ने देवी के मन्दिर के पास ही एक विशाल सुन्दर आरामदायक मठ तैयार कराया । उसमें माणिकदेव रहने लगा । राजा

अभ्यासानुसार सप्ताह में दो तीन बार देवी के दर्शनों को जाते थे। उसी समय वह माणिकदेव से देवी जी के माहात्म्य और चमत्कारों के विषय में बहुत देर तक चर्चा वार्ता करते थे। यदा कदा कोई विशेष महत्व का कार्य होता तो स्वतः माणिकदेव राजा के पास आता और वहीं बहुत देर तक वह राजा के साथ चर्चा करता था। आज भी ऐसे ही किसी महत्व के सम्बन्ध में उसकी सवारी आई थी। उसके चेहरे पर कुछ गाम्भीर्य था। थोड़ी देर दोनों ही चुप रहे। महाराज ने शान्ति भंग की। आदर से उसकी ओर पुनः देखा, और बोले "क्या आज्ञा है आपकी।"

मेरी! मेरी क्या आज्ञा है? अधिक गम्भीर होकर पिरोहित जी बोलने लगे, "देवी ने आपको कुछ सन्देश दिया है वही कहने को मैं आया हूं।" देवी का सन्देश! यह शब्द सुनते ही राजा का शरीर सिहर उठा। क्योंकि देवी कोई न कोई महत्वपूर्ण आदेश देती है। उसका सन्देश कोई विशेष दिशा निर्देश करने वाला होता है। साक्षात् देवी का शब्द सुनने को कितने ही लोग उत्सुक रहते हैं। इसके लिये सब लोग माणिकदेव की मना-वनी करते हैं, उसे मनमाना धन देते हैं क्योंकि वही देवी को बुलवा सकता है। ऐसी लोगों में भ्रान्ति फैली हुई है। माणिकदेव द्वारा देवी को सभी प्रसन्न करना चाहते, हैं वरदान मिलता है न देवी का। राजा ने देखा कि जब कभी उसका विशेष काम हुआ तो स्वयं देवी के मन्दिर में जाकर माणिकदेव के कथनानुसार पूजा करवा कर देवी को प्रसन्न करता था और देवी की आज्ञा सुन कर तदनुकूल कार्य कर सफलता पाता। कई बार उसे प्रत्यक्ष आज्ञा मिली थी। इससे उसे बहुत खुशी थी। आज तो स्वतः ही देवी जी प्रसन्न हो सन्देश देना चाहती हैं तो फिर कहना ही क्या है? पिरोहित पूजा कर देवी से प्रश्न पूछता और तदनुसार देवी प्रत्यक्ष बोल कर उत्तर देती। इस प्रकार सर्वत्र यह जाल पसर गया था। परन्तु जब कि प्रश्न पूछे बिना ही देवी जी बोली हैं तो विशेष महत्त्व समझना चाहिए।

आज देवी जी का सन्देश—क्या मुझे पुत्र प्राप्ति के सम्बन्ध में क्या कुछ महादेवी नें कहा है क्या? इस प्रकार का प्रश्न—कल्पना राजा के मन में चट से आई और गई, उसका हृदय आनन्द से भर गया। किन्तु यह प्रसन्नता अधिक समय रह न सकी। पिरोहित की अति गम्भीर मुद्रा देखकर यह सन्देश आनन्द का नहीं है कोई संकट का सूचक मालूम होता है ऐसा उसे प्रतीत होने लगा। इस प्रकार राजा सन्देह दोला में झूलने लगा।

राजा को अधिक समय संशय में नहीं रखते हुए पुरोहित जी बोले, "महाराज कल–पिछली रात्रि में देवी जी के मुख से ऐसी वाणी निकली कि राजघराने में कोई बहुत बड़ा संकट बहुत शीघ्र आने वाला है। पुरोहित के मुख से देवी की शब्दावली सुनते ही राजा भय से कांप उठा, चेहरा फीका पड़ गया आश्चर्य से बेतहाशा हो पुरोहित जी की ओर आकुलित नेत्रों से देखने लगा। मानों सचमुच ही कोई वज्रपात होने वाला हो। उसका चेहरा बिल्कुल उतर गया। मुख से एक शब्द भी नहीं निकला मानो आजीव चित्रित मूर्ति हो। अचल गुम–सुम रह गया। उसकी इस दशा को देखकर पुरोहितजी पुनः बोले, राजन् ! इतना भयातुर हो अधीर होने की कोई बात नहीं। क्योंकि आने वाला संकट आयेगा ही, या कब आयेगा, उसका स्वरूप क्या है ? उसके निवारण का उपाय क्या है ? इसका देवी ने कोई स्पष्टीकरण नहीं किया है। अस्तु, आप वहाँ स्वयं आकर, पूजा करके अच्छी तरह देवी से विचार कर पूछना चाहिए। क्योंकि स्वयं देवी आपको संकट निवारण का उपाय भी बतायेगी। "यही कहने को मैं आपके पास आया हूं।" अब आप जानें।

पुरोहित ने यह सान्त्वना के रूप में कहा। किन्तु राजा को इससे जरा भी समाधान नहीं मिला। मैं कब देवी के पास जाऊँ, कब पूजा करूँ और किस प्रकार शीघ्रातिशीघ्र संकट का स्वरूप और उसके निवारण का उपाय देवी से पूछ कर निश्चय करूँ। यह कलबली उसे सताने लगी। पुरोहित राजा को व्याकुल कर चलता बना।

हिंसा से आत्मा का पतन

होता है, इससे बचना चाहिए।

आचार्य श्री का चातुर्मास--२

राजा पद्मनाभ शैया पर करवट बदल रहे हैं। निद्रा देवी मनानें पर भी नहीं आई। उनके मस्तिष्क में अनेकों तर्क–वितर्कों की लहरें दौड़ने लगीं आखिर देवी की ओर से इस प्रकार के सन्देश आने का क्या कारण है? इसी सम्बन्ध में विचार करते–करते रात्रि पूर्ण हो गई। देवी की सेवा में मैंने कोई भूल नहीं की, मैं बराबर सावधान रहा हूं? इतना करने पर भी देवी प्रसन्न नहीं? इसका क्या कारण है? क्यों ऐसा सन्देश दिया? इस प्रकार अनेकों प्रकार से विचार करने पर भी राजा को कारण स्पष्ट नहीं हुआ।

देवी की कृपा के लिए राजा ने सब कुछ किया था। कुल मर्यादा छोड़ी अपनी सत्यार्थ परम्परा छोड पशुबली देना प्रारम्भ किया। श्री मल्लिनाथ जिनालय की सेवा-पूजा संरक्षण को पूर्वजों ने जो दान दिया था उसे बन्द कर देवी की सेवा-पूजा में लगाना स्वीकार किया था। इतना ही नहीं पन्द्रह वर्षों से भूलकर भी मन्दार पर्वत पर श्री जिनेन्द्र प्रभु के दर्शनों को भी नहीं गया था। जिनमन्दिर की अपेक्षा भी अधिक खेती-बाडी, सोना-चाँदी देवी के मन्दिर को दिया था। ठाट-बाट से देवी पूजा कराता था। माणिक देव तो उसका राजगुरु ही बन गया था। इतना सब कुछ होने पर भी देवी रुष्ट हो गई इस विषय में उसे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था।

सवेरा हुआ। महाराज देवी पूजा की समस्त सामग्री एवं बली लेकर देवी के दर्शनों को आये। पूजा-पाठ करते-करते सन्ध्याकाल हुआ। लगभग सन्ध्या समय छह बजते ही देवी की पूजा-आरती होकर पशु बली दी जायेगी पुनः आरती होगी। इस प्रकार पुरोहित ने आज्ञा दी। उसकी आज्ञानुसार आरती को एकत्रित हुए सब लोग बाहर निकल गये।

मन्दिर पूर्ण शान्त दिखने लगा। अन्धकार होने लगा। मात्र मन्दिर के पडौस में स्थित मठ में पिरोहित के शिष्य और सेवकों का कुछ मन्द मन्द शब्द सुनाई देता था। सर्वत्र नीरवता छा गयी। शान्तता देख पुरोहित ने आवाज लगाई "नरसिंह"।

तत्क्षण एक नव जवान युवक उसके सामने नम्रता से आ खड़ा हुआ। पुरोहित उससे कहने लगा—

जाओ, मन्दिर का दरवाजा बन्द करो। मठ से भी कोई प्रकार का हल्ला गुल्ला नहीं होने देना। आज महाराज देवी से कोई प्रश्न पूछने वाले हैं। प्रश्न के साथ कुछ विषय का स्पष्टी करण देवी से कराने वाले हैं समझे ? जा। "इस प्रकार कहकर माणिक देव ने उससे कुछ नेत्र संकेत किया, मौन भाषा में कुछ समझाया और दरवाजा बन्द कर नरसिंह चला गया।

माणिक देव महाराज को लेकर गर्भगृह में गया। वहां के भयानक, हृदय विदारक दृश्य को देखकर राजा की छाती धक्-धक् करने लगी। यद्यपि पिछले चौदह वर्षों में उसने कई बार ऐसे हृदय-विदारक दृश्य देखे थे। परन्तु आज पहले से ही उसे भय था पुनः यह हत्याकाण्ड देखने को मिला इससे यह दृश्य विशेष भयानक दीख पड़ा। वह अनमना साथ ही साथ पुरोहित के पीछे जाकर देवी के सामने खड़ा हो गया। देवी काल-विकाल विद्रूप भयंकर मूर्ति, नाना आयुध धारण किये हुए उसके आठ हाथ, वैसे ही गले में नरमुण्डों की माला तथा उसके पाँवों के पास अभी-अभी काटा हुआ, रक्त से लथपथ पशु का यह धड़, यह सब देखकर भला किसका हृदय नहीं धड़केगा ? वहाँ के दृश्य से तो श्मशान में अधिक शान्तता हो सकती है। पूरा बूचड़ खाना था वहाँ। मूक पशुओं का घात स्थान ? घृणा और भय स्वाभाविक था। राजा साहब जैसे ही वहां पहुँचकर खड़े हुए कि माणिक देव पुरोहित ने देवी पगतले भरे रक्त में एक उंगली डुबोकर राजा के ललाट पर टीका लगाया, उसे तीर्थ-प्रसाद दिया और अतिगम्भीर मुद्रा करके आँखें बन्द कर देवी की भक्ति-स्तुति करने लगा। वह प्रार्थना करने लगा उसी समय महाराज ने भी साष्टांग नमस्कार किया। वहाँ व्याप्त धूप की धुंआ की तीव्र बास से राजा का जीव घुटने लगा था, पर करता क्या ? खड़ा रहा। वहीं देवी के पास ही रखा नन्दादीप जल रहा था उसमें और थोड़ा तेल डालकर पुरोहित भी देवी के पास ही खड़ा हो गया। उससे राजा ने जैसा कहा उसी प्रकार देवी से प्रश्न किया। वह धूर्त बोला—

"महादेवी, माते ! इस राजा को बहुत शीघ्र ही कोई बड़ाभारी संकट आने वाला है ऐसा आपका वचन मुझे सुनने को मिला था। इसका

कारण क्या महाराज की ओर से कोई त्रुटि हो गई है ? उस संकट के निवारण का उपाय क्या है ? आपकी सेवा को महाराज सदा तैयार हैं।" इस प्रकार प्रश्न कर पुरोहित नेत्र बन्द कर हाथ जोड़े खड़ा हो गया और महाराज भी हाथ जोड़े हुए उत्तर पाने की उत्सुकता से देवी की ओर कान लगाये विनय से खड़े हुए थे। देवी क्या उत्तर देती है। अल्प समय के बाद देवी के मुख से आवाज आ रही हो ऐसा आभास होने लगा। पुन: निम्न प्रकार स्पष्ट शब्द सुनायी देने लगे—

राजन् आपकी भक्ति में कोई अन्तर नहीं पड़ा। परन्तु इस नगरी में एक नग्नदिगम्बर साधु का अहिंसा उपदेश प्रारम्भ हो गया है, वहां तुम्हारी राजधानी से सैंकड़ों लोग उस उपदेश में जाने लगे हैं। वे बड़े प्रेम से उस उपदेश को सुनते हैं। आगे-पीछे उसके उपदेश से आपके रणवास व राजवाड़े में भी लोगों की भावना बदलेगी, बस इसी कारण से इस राजधानी पर महासंकट होगा। सावधान हो ओ ! और उसका योग्य उपाय करो। बस।"

देवी की आवाज बन्द हो गई। देवी के मुख से निकले शब्द बराबर सही होते हैं ऐसा राजा को विश्वास था। देवी सत्य कथन करती है इसलिए वह निश्चय समझ रहा है कि कैसा भी संकट आयेगा। यह आपत्ति अवश्य आने वाली है। नि:सन्देह भारी आपत्ति आयेगी ऐसा उसे पूर्ण विश्वास हो रहा था। उसी समय पुरोहित देवी के शब्दों का स्पष्टीकरण करते हुए कहने लगा "नग्नसाधु के कारण संकट आने वाला है।" इस प्रकार ही कुछ बड़बड़ाता पद्मनाभ बाहर आया, पुरोहित ने दरवाजा खोला और बाहर खड़े रथ पर सवार होकर राजा नगरी को वापस चल दिया।

यह घटना श्रावण मास की है, आकाश घनाघन व्याप्त था—चारों ओर काली घटाएँ छायीं थीं। उसी प्रकार महाराज के अन्त: करण में भी उतना ही सघन अंधकार फैला हुआ था। उसका चेहरा फीका और घबराहट से भरा था देखने में भयातुर लगता था। उधर माणिक देव अपने षड्यन्त्र को सफल हुआ समझ कर हंसमुख हो मठ में प्रविष्ट हुआ और अपने सामने अपने शिष्य परिवार को बैठाकर पुन: इसी विषय पर चर्चा करने लगा।

पद्मनाभ महाराज ने जिस समय देवी का मन्दिर निर्माण कराया था और पशुबली की प्रथा चालू की थी उसी समय बहुत से अहिंसा धर्मावलम्बियों को यह कृत्य अनुचित लगा था। इतना ही नहीं राजघराने के वृद्धजन भी इसकृत्य के विरुद्ध थे। परन्तु महाराज की सत्ता के समक्ष किस की चल सकती थी ? सबकी चतुराई, बुद्धिमानी धरी रह गई। राजा के किसी भी पूर्वज ने हिंसाधर्म का अवलम्बन नहीं किया था। वे सब जैन नग्न मुनी को ही अपना गुरु मानते थे। दिगम्बर साधुओं के प्रति उनकी अकाट्य दृढ़ श्रद्धा थी। उस समय पद्मनाभ राजा को भी इस हिंसा मार्ग से रोकने को एक नग्न मुनिराज ने बहुत प्रयत्न किया था। परन्तु उनकी शिक्षा का कोई असर राजा पर नहीं हुआ था। देवी एक "साक्षात् जागृत शक्ति है और उसी की कृपा से मेरी कन्या जीवन्त रह सकी है" ऐसा उसे पूर्ण विश्वास जम गया था। इतना ही नहीं अपितु देवी यदि रुष्ट हो गई तो मेरा सर्वनाश हो जायेगा यह भी उसके मन में अटल [illegible] था। यही कारण था कि उस पर किसी भी साधु-सन्त का प्रभाव नहीं पड़ा। किसी का सदुपदेश उसे उस पापकार्य से परावृत नहीं कर सका। इसके विपरीत हुआ यह कि जिसने देवी को बलिदान करने का निषेध किया उनके घरों में आग लग गई, उनका धन-माल लुट गया, नाना उपद्रव हो गये। इस कारण लोगों के मन में एक विचित्र दहशत बैठ गयी। फलतः धीरे-धीरे राजा के समान प्रजा भी कालीदेवी की भक्त बनने लगी। सर्व ओर हिंसा का ताण्डव दृष्टिगत होने लगा।

"जहाँ हिंसात्मक क्रियाकाण्ड हों, लोग हिंसक हों वहाँ, साधुओं को नहीं रहना चाहिए।" इस प्रकार विचार कर सभी नग्न दिगम्बर दयालु मुनिराज उस नगरी से निकल बिहार कर चले गये। इसके बाद आजतक चौदह वर्षों में कोई भी साधु वहाँ नहीं पधारे। किसी भी मुनि के चरण नहीं पड़े। कोई भी सन्त राजधानी की ओर नहीं आये। कालीमाता के उत्कर्ष को यह बहुत अच्छा हुआ। परिणाम यह हुआ कि लोगों के हृदय से अहिंसाधर्म लुप्त प्रायः होने लगा और देवी की पशुबली ही हमारा कर्त्तव्य है ऐसा भाव जमने लगा। बली चढ़ाना ही हमारा कर्त्तव्य है ऐसा उन्हें भास होने लगा। इस प्रकार हिंसा प्रवृत्ति इतनी प्रबल हो गई कि प्रतिवर्ष हजारों मूक, निरपराध पशु-देवी की भेंट चढ़ने लगे। रक्तधारा बहने लगी। यह सब देखकर महावीर प्रभु के सच्चे अनुयायियों को बहुत ही दुःख होता, पीड़ा हुयी परन्तु राजा की दृष्टि विपरीत हो जाने से किसी का कुछ भी चल नहीं सकता था। इस कारण प्रतिकार का किसी ने विशेष कोई प्रयत्न भी नहीं

किया । जो हो अन्याय, अत्याचार अनीति और दुष्कर्म भी अधिक नहीं चला करती । पाप का घड़ा भी भरता है तो फूटता ही है । कोई न कोई सहज कारण प्रतीकार करने वाला होता है । अन्याय का सर्वनाश होता है । इस न्यायानुसार मल्लिपुर का अनर्थकारी हिंसाकाण्ड का भी अन्त अति नजदीक आ गया है ऐसेचिन्ह दिखाई पड़ने लगे । दीपक बुझने को होता है तो अपना पूरा प्रकाश दिखाता है । इसी प्रकार यह हिंसाकाण्ड भी अन्तिम सीमा पर था । पर अब बुझने वाला है यह चिन्ह भी आ गया । इसका कारण था कि इस वर्ष श्री १०८ आचार्य अमरकीर्ति जी महाराज का चातुर्मास यहीं स्थापित हुआ था वे बहुत विद्वान और प्रभावशाली मुनीश्वर थे । उनकी तपश्चर्या की शक्ति भी अलौकिक थी । उनका उपदेश जादूभरा था । लोगों के मन पर उसकी अत्यन्त शीघ्र अमिट छाप पड़ती थी ।

विहार करते-करते जिस समय आचार्य श्री अमरकीर्ति जी मल्लिपुर राज्य में आये उस समय अनेकों धर्मभीरुओं ने जो उनके प्रभाव और तपोबल को नहीं जानते थे, उधर नहीं आने की प्रार्थना की थी । परन्तु एक राजा ही अहिंसा धर्म का विरोधी हो गया है । हिंसामार्ग पकड़ कर वह अधर्म प्रचार कर रहा है । इससे जैन मुनी वहाँ नहीं जाना चाहिए यह बात आचार्य श्री को रुचिकर नहीं हुयी । एक जैन धर्मावलम्बी अहिंसा परमोधर्म परित्याग कर सर्वत्र हिंसा रूप महापाप का प्रचार-प्रसार करे यह भला सत्य, अहिंसा के अवतार महामुनिराज किस प्रकार सहन करते ? उन्होंने दृढ़ निश्चय किया था कि मैं सत्प्रयत्न कर राजा को सन्मार्ग पर लाऊँगा, पूर्णतः इस चौदह वर्ष से प्रचलित-प्रसरित मूक प्राणीवध प्रथा को आमूल-चूल नष्ट करूँगा ऐसा उन्हें पूर्ण आत्मविश्वास था । इस कालीमाता का नाम निशान धोकर रहूंगा ऐसा उन्होंने दृढ निश्चय किया था । यही कारण था कि उन्होंने किसी की प्रार्थना, बात को नहीं सुनकर, नहीं मानकर इच्छापूर्वक मल्लिपुर में ही चातुर्मास स्थापना की थी । जैन मुनिराज का आगमन हुआ जानकर कितने ही श्रावकों को परमानन्द हुआ, परम सन्तोष हुआ । उन्होंने मुनिराज के चरणों में व्रत भी धारण किया कि हम पूर्ववत् अहिंसाधर्म ही पालन करेंगे । हिंसा का आश्रय कभी नहीं लेंगे ।

अहिंसा धर्म का व्यापार बढ़ने लगा । आषाढ और श्रावण मास के अन्दर ही अन्दर आचार्य श्री के श्रोताओं की अच्छी भीड़ जमने लगी । उपदेश सुनकर उनका परिणाम बदल गया । दया, ममता और करुणा का

स्रोत उमड़ पड़ा। आचार्य श्री की प्रभावी वाणी ने उन्हें समझाया कि धर्म अहिंसा ही है। इसका कितना महत्त्व है जन-जन के हृदय में अंकित कर दिया। फलतः उनका धर्मपरिवर्तन उन्हें कितना घातक है, दुःखद और विपरीत है यह उन्हें स्वयं विदित होने लगा। हमारा कितना भयंकर पतन हुआ यह जानकर उन्हें धर्मभ्रष्ट होने का पश्चात्ताप होने लगा। गुरु भक्ति दृढ़ होने लगी उसी प्रकार जिनेन्द्रभक्ति भी जाग्रत हो गई। इन गुरुदेव का प्रभाव वृद्धिगत होता हुआ देखकर ही माणिक देव ने देवी का झूठा सन्देश राजा को दिया था। नया सन्देश बताकर उसे सावधान किया था क्योंकि राजा ने पुनः जैनधर्म-अहिंसाधर्म स्वीकार कर लिया तो उसका दिवाला निकल जायेगा, उसकी दाल नहीं गलेगी, यह उसे भय था। भोले लोगों को मिथ्या धर्म में फंसाकर और मनमाना आचरण कर सुख-भोग निरत हुए उस पुरोहित को जैनमुनी एक भयंकर शत्रु प्रतीत होते थे। इसीलिए यह नवीन अंकुर जमने न पाये इसके पूर्व ही उसका समूल नाश करना चाहिए इसी अभिप्राय से माणिक देव ने यह सारी कारस्थानी रची थी। क्योंकि राजा मुनिराज के पास गया तो अछूता नहीं रह सकेगा।

देवी की सामर्थ्य पर राजा का पूर्ण विश्वास है यह पुरोहित को भले प्रकार अवगत था। इसीलिए उसने सोचा था कि अपने ऊपर आते संकट का निमित्त कारण मुनी को राजा शीघ्र ही राज्य से बाहर निकाल कर ही रहेगा ऐसा उसे पूर्ण विश्वास था। परन्तु जैन दिगम्बर वीतरागी साधु प्राण जाने पर भी चातुर्मास स्थापित स्थान से जा नहीं सकते, यह उस बेचारे, अज्ञानी, स्वार्थान्ध को क्या पता था। होता भी कैसे ?

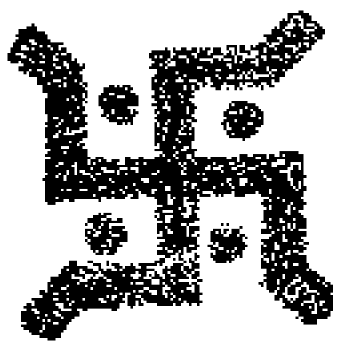

धर्म हिंसा में नहीं, अहिंसा में है।

दृष्टि भेंट–3

श्रावण मास गया। भाद्रपद मास प्रारम्भ हुआ। सर्वत्र हरियाली छा गई। पहाड़ पर छायी हरियाली नवीन फूलों की बहार, उसके मध्य स्थित जिन भवन अपूर्व शोभा पा रहा था। मन्दार पहाड़ यथा नाम तथा गुण प्रतीत होने लगा। इस समय का रमणीय दृश्य वस्तुतः अवर्णनीय था। पहाड़ के मार्ग में चट्टानों को चीर कर चार–पांच गुफायें निर्मित थीं। इन्हीं में से एक गुफा में आचार्य श्री ने चातुर्मास स्थापित किया था। वहीं वात्सल्य बना कर रहते थे। उस गुफा के सामने एक विशाल–सुविस्तृत मण्डप था। श्री १०८ आचार्य महाराज इसी मण्डप में एक स्वच्छ शिला पर आसीन हो धर्मबन्धुओं को हितोपदेश दिया करते थे। हजारों भव्य पुण्डरीक एकत्र हो उनका मधुर धर्मामृत पान करने आते थे। शनैः शनैः दस लक्षण पर्व निकट आ पहुँचा। आचार्य श्री के श्रोताजनों की संख्या भी बहुत अधिक बढ़ गई। भाद्रपद शुक्ला पञ्चमी का दिन आया। पहाड़ पर स्थित मल्लिनाथ जिनालय में आज विशेष वैभव से पूजा प्रारम्भ हुई। पञ्चामृताभिषेक पूर्वक जय जयकार करते लोग अति आनन्द से पूजा कर रहे थे। इधर गुफा के सामने मण्डप में भी सैकड़ों लोग जम गये थे। पर्वत पर मुनिराज के दर्शनों का लाभ होगा। इस विचार से दूर–दूर से लोग आये थे। उनमें से कितने ही लोग श्री मल्लिनाथ भगवान के दर्शन कर मुनि दर्शन को आ रहे थे। गुहा के सामने मण्डप के मध्य एक पत्थर का चौकोर चबूतरा था। उसी पर आचार्य श्री विराजमान थे। एक ओर पुरुष बैठे थे और दूसरी ओर स्त्रियाँ स्थिर चित्त से उनका उपदेश सुनने को जमी थीं। पर्युषण पर्व का प्रथम दिवस था। अतः प्रथम आचार्य श्री ने पर्व का परिचय का विवेचन किया, पुनः प्रथम 'क्षमा' धर्म की खूब बारीकी से व्याख्या की। भोली जनता गद्गद हो गई। मानों खोई सम्पत्ति उन्हें मिल गई।

उत्तम क्षमा धर्म का अर्थ क्या है? उसका पालन किस प्रकार करना? इन प्रश्नों का विवेचन करते हुए प्रसंगानुसार उन्होंने अहिंसा धर्म का भी थोड़ा सा परिचय रूप उपदेश दिया। अहिंसा का महत्व क्या है? इस विषय

पर वे बोल रहे थे कि घोड़ों की टाप की आवाज सुनाई पड़ने लगी, सहसा चौंके और सबकी दृष्टि उधर ही फिर गई। बाहर देखा कि एक चार घोड़ों का सुन्दर रथ मण्डप के समीप आकर ठहरा। रथ से एक तरुण राजकुमार नीचे उतरा, वह सीधा मण्डप में आया और उसने बड़ी भक्ति, श्रद्धा-एवं विनय से गुरु चरणों में नमन किया, दर्शन किये और महाराज श्री का आशीर्वाद लेकर उनके चबूतरे के पास ही एक ओर उपदेश सुनने को शान्त मन से बैठ गया। यह राजपुत्र कौन ? इस विषय में लोगों के मन में कौतूहल हुआ। उसी समय आचार्य श्री का उपदेश प्रारम्भ हुआ। सभी लोगों का लक्ष पुनः उधर ही हो गया। अहिंसा किस प्रकार पालन करना चाहिए। गृहस्थों की अहिंसा की मर्यादा क्या है, मुनियों की अहिंसा किस श्रेणि की है और राजघराने की अहिंसा किस सीमा की है इस विषय का विवेचन इतनी गम्भीरता से किया कि लोगों का मन दया धर्म से उमड़ पड़ा। बहुत लोगों को अपने हिंसाकर्म का पश्चात्ताप होने लगा। कितनों ने आगे कभी हिंसा नहीं करने की प्रतिज्ञा की। और जो अहिंसावादी बने रहे उनकी अहिंसा धर्म पर विशेष श्रद्धा, और प्रगाढ आस्था जम गई। महाराज श्री का उपदेश समाप्त हुआ। कितने ही स्त्री पुरुष उनके दर्शन कर जाने लगे। तथा कुछ लोग "यह राजकुमार कौन है ?" इसे अवगत करने के लिए वहीं पास में खड़े हो गये। रथ के पास भी बहुत लोगों का जमघट लग गया। बहुत से लोग जब निकल कर चले गये तब वह राजकुमार महाराजजी के पास विनयावनत हो कुछ कहता हुआ बैठ गया। बहुत देर के बाद पुनः एक बार मुनिराज के दर्शन कर वह राजकुमार मण्डप से निकल कर बाहर आये और रथ में सवार होते ही रथ वेग से चलने लगा। मल्लिपुर की ओर जाने वाले लोगों को कुछ थोड़ी बहुत जानकारी हो गई वही चर्चा फैल गयी। थोड़े ही समय में राजकुमार के बारे में जानकारी हो गई। जिन लोगों ने आचार्य महाराज और राजकुमार का वार्तालाप सुना था उन्होंने सभी लोगों को स्पष्ट विस्तार पूर्वक समझा दिया। इस प्रकार सर्व जनता को सही हकीकत ज्ञात हो गई।

वह राजकुमार कौन था ? पाठक भी यह जानने को उत्सुक होंगे ? तो सुनिये। मल्लिपुर से लगभग १५–२० (पन्द्रह–बीस) मील दूर एक चम्पा नगर था। वहां का राजा जैन धर्मावलम्बी कर्णदेव था, उन्हीं का यह शहजादा यह राजकुमार था। ये परिवार सहित मुनिभक्त थे।

कर्णदेव की मुनिभक्ति प्रगाढ़ थी। परन्तु वृद्धावस्था अधिक होने से वे तीव्राकांक्षा रहने पर भी दर्शनों को नहीं आ सके। आचार्य अमरचन्द्र का चातुर्मास मल्लिपुर में हो रहा है। यह जान कर ही उन्हें मुनिदर्शन की तीव्राकांक्षा थी उसी की पूर्ति के लिये उन्होंने अपने पुत्र महेन्द्र को मुद्दाम भेजा था। महा पर्युषण पर्व में मुनिराज दर्शन–गुरु दर्शन करना मूल हेतु था इसके अतिरिक्त कर्णदेव ने मुनिराज से एक विनती करने को युवराज को भेजा था।

मल्लिपुर और चम्पा नगर दोनों राज्य बहुत ही पास–पास थे। दोनों राज्यों में विशेष कोई वैर–विरोध नहीं था और न ही प्रेम ही था। मल्लिपुर के राजा ने कालीमाता का मन्दिर बनवा कर हिंसा का जो प्रचार–प्रसार किया था वह कर्णदेव को कतई पसन्द नहीं था। जिस समय उसे यह विदित हुआ कि अमरचन्द्र महाराज का चातुर्मास मल्लिपुर में होने जा रहा है तो उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ। कारण कि कालीदेवी का मन्दिर और आचार्य श्री का निवासस्थान इसमें कोई अधिक दूरी नहीं थी। बलि का काण्ड वहां निरन्तर चलता ही रहता था न! फिर मल्लिपुर के राजा की भांति वहां की प्रजा भी कालीमाता की परमभक्त हो गयी थी, इससे उसे बहुत चिन्ता थी कि आचार्य श्री की चर्या किस प्रकार अन्त तक निभ सकेगी। यही नहीं देवी की वार्षिक यात्रा भी आश्विन महीने में ही होती थी। उस समय हजारों मूक प्राणियों बली ली चढती थी। उसप्राणी संहार काल में आचार्य श्री का मल्लिपुर में रहना संभव नहीं, यह सोचकर उसने विचारा कि पर्व पूरा होते ही महाराज को चम्पा नगर में ले आना चाहिये। भाद्रपद मास समाप्त होते ही गुरुदेव मल्लिपुर से विहार कर चम्पा नगर पधारें यह प्रार्थना करने को ही कर्णदेव राजा ने अपने सुपुत्र महेन्द्र को भेजा था। जैनमुनि–साधु चातुर्मास में स्थान परिवर्तन नहीं करते यह कर्णदेव को विदित न हो यह बात नहीं थी। वह जानता था। तो भी इस प्रसंग में आचार्य श्री को विकट समस्या का सामना किस प्रकार करना होगा यह समझने समझाने को ही उन्होंने अपने पुत्र को भेजा था।

वराज महेन्द्र ने यह सम्पूर्ण बीभत्स दृश्य सम्बन्धी समाचार आचार्य श्री को समझाया और संकट काल का उल्लेख करते हुए, भाद्रपद मास पूर्ण होते ही चम्पानगर विहार करने की प्रार्थना की थी। परन्तु महाराज ने तो स्वयं जान-बूझ कर ही वहाँ चातुर्मास किया था। अतः

उन्होंने स्पष्ट कहा कि हम यहाँ से कहीं नहीं जा सकते । यही नहीं, हम इस घोर हिंसा को भी रोकने का भरसक प्रयत्न करेंगे यह भी उन्होंने अपना दृढ संकल्प महेन्द्र कुमार को सुनाया । किस उपाय से यह कार्य बन्द करना है, किस मार्ग को अपनाना होगा, किस प्रकार प्रारम्भ करना होगा और किस प्रकार आन्दोलन सफल होगा यह सब उपाय हम पर्युषण के अन्तिम दिवस घोषित करेंगे यह भी आचार्य श्री ने महेन्द्र युवराज को बताया । महाराज श्री का यह एकान्त दृढ निश्चय सुनकर महेन्द्र को अत्यन्त आनन्द हुआ । किन्तु यह योजना किस प्रकार कितनी सफल होगी यह महेन्द्र को शंका होने लगी । वह रथ में बैठकर भी यही विचार करता जा रहा था । उसके मष्तिष्क में यही प्रश्न घुमड़ रहा था ।

महेन्द्र राजकुमार का रथ चला जा रहा था । मल्लिपुर की सीमा पार करते न करते एक रथ मल्लिपुर की ओर से आता हुआ दीखा । यह मल्लिपुर के बाहर निकल कर कालीमाता के मन्दिर की ओर जाने वाले कर्णमार्ग पर दौड़ने लगा । महेन्द्र ने यह सोचकर कि संभवतः इस रथ में सवार हो पद्मनाभ राजा स्वयं देवी के दर्शनों को पधार रहे हैं, अपने सारथी को धीमे-धीमे रथ चलाने की आज्ञा दी । इसका-कारण यह था कि यदि रास्ता में राजा से भेंट हो जाय तो इस विषय में उससे कुछ विचार-विमर्श करना चाहिए । कुछ ही समयानन्तर वह रथ सामने आया और महेन्द्र की अपेक्षानुसार दोनों का आमना-सामना हो गया । दोनों की भेंट तो हुयी परन्तु उस रथ में राजा नहीं अपितु कोई राज स्त्रियाँ हैं ऐसा उसे दिखाई दिया । बात यह थी कि पद्मनाभ राजा की पुत्री मृगावती और उसकी मातेश्वरी सुरादेवी दोनों ही देवी के दर्शनों को निकली थीं । पहाड़ की ओर से आता हुआ रथ किसका है ? क्यों यह धीरे-धीरे चला आ रहा है ? यह जानने की उत्सुकता उनको भी हो रही थी । उनका किसी का भी एक दूसरे से परिचय नहीं था । तो भी विचक्षणबुद्धि राजकुमार महेन्द्र ने अनुमान लगाया कि ये देवी के मन्दिर की ओर जानेवाली स्त्रियाँ राजकन्या व राजरानी होना चाहिए । दोनों रथ अति निकट आमने-सामने आने पर मृगावती ने गर्दन ऊपर कर उधर देखा, महेन्द्र भी इधर ही देख रहा था । दोनों की दृष्टि का मिलाप हुआ । एक ही क्षण ! मिलते ही मृगावती ने अपनी दृष्टि नीचे कर ली । पलभर में दोनों रथ एक दूसरे को पार कर दूर जाने लगे । इस रथ में सवार कोई राजपुत्र है, यह मुनि के दर्शन कर आया होगा, इस प्रकार

उन दोनों को उसी समय समझ में आ गया। परन्तु यह कौन राजकुमार है यह उन्हें बिल्कुल भी समझ में नहीं आया।

मृगावती की यह प्रथम दृष्टि ही उस पर क्षणभर को पड़ी थी। राजपुत्र के साथ यह पहला दृष्टिपात था। उसका पूर्व परिचय तो दूर, कभी दर्शन ही नहीं हुआ था, तो भी उस एक क्षणमात्र की दृष्टि क्षेप से उसे एक अननुभूत हृदयानन्द उत्पन्न हुआ। उसके सम्पूर्ण शरीर में यह आनन्द संचार अपूर्व था। वह राजपुत्र कौन हो सकता है? यह जानने की उत्कट उत्कण्ठा उसके हृदय में जाग्रत हो गई थी। परन्तु उसे समझने का मार्ग ही क्या था! कोई उपाय न था। वह देवी के दर्शन को मन्दिर में गई, परन्तु प्रतिदिन के समान उसका लक्ष देवी की ओर नहीं गया। मन कहीं और ही ठिकाने था। और रोज के समान वहाँ से वापिस आते समय भी सायंकालीन आकाश लालिमा की ओर दृष्टि नहीं डाली, तथा समूह में लौटते हुए पक्षियों की पंक्तियों को भी आनन्द से नहीं देखा, पशुओं की ओर भी दृष्टि नहीं डाली, खोई-खोई सी चली जा रही थी। यही नहीं राजबाड़े में पहुँचकर भी खान-पान की सुध-बुध भी भूल गई। क्या गजब है एक क्षण की चार आँखों की भिड़न ने काया पलट कर दी, क्या जादू है यह? क्या ही विचित्र मिलन है यह? इस राग के कारण ही मनुष्यों के हृदय की भावना एक क्षण में ही उलट-पुलट हो जाती है। मात्र एक ही कटाक्ष से कितनों का हृदय जीत लिया जाता है। इसके विपरीत नजर से एक ही इशारे की ईर्ष्या से हजारों का मरण भी हो जाता है। न केवल मनुष्यों पर ही यह दृष्टी का असर होता है अपितु पशु-पक्षियों पर भी दृष्टि का जादू विलक्षण ही प्रभाव पड़ता है। फिर महेन्द्र की नजर-दृष्टिपात से मृगावती पगली सी हो गई तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? यह कोई नवीन काम है क्या?

मृगावती की अवस्था तो विचित्र हुयी। ठीक है। पर महेन्द्र! उसका हाल क्या हुआ? यह कहने की आवश्यकता ही क्या है? क्या उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा क्या? इस एक क्षण की नजर भिड़न का परिणाम क्या हुआ? कुछ नहीं हुआ क्या?

× × × ×

मृगावती की निराशा–4

माणिकदेव ने जब से राजा को कहा कि आपको देवी की आज्ञा हुयी है कि "देश या राजघराने में कोई बड़ा संकट आने वाला है।" तभी से राजा का मन बहुत ही उदास और दुखी था उसे जरा भी शान्ति न थी। सन्तान सुख की आशा से उसने देवी का मन्दिर बनवाया था और बली चढाने रूप महा घोर पापकर्म शुरू किया था। सनातन जैनधर्म का त्याग कर कालीदेवी की आराधना स्वीकार की थी। यह सब परिवर्तित होने पर भी उसे कुछ भी सुख व आनन्द नहीं प्राप्त हुआ। होता कैसे ? मार्ग ही विपरीत पकड़ा था। उस दिन वह देवी की आज्ञा सुनने को भी स्वयं गया, और जिस समय पुरोहित ने उसके भाल पर तत्काल पशुवध कर उसके रक्त का तिलक लगाया था, उस समय अचानक ही उसके शरीर में करुणा के रोमांच भर गये थे। चौदह वर्ष से बराबर वह यह अमानुषिक दृश्य देखता रहा, परन्तु क्या वस्तुतः उससे उसका हृदय पाषाण हो गया क्या ? नहीं, यह नहीं कह सकते कि उस राजा के मन से अहिंसा धर्म का सर्वथा सर्वाभाव हो गया हो। वस्तु स्थिति यह थी कि "अर्थी दोषान्न पश्यति।" स्वार्थी जन दोषों की ओर लक्ष्य ही नहीं देते हैं। राजा की भी यही दशा थी वह स्वार्थान्ध हो सारासार-हिताहित विचार से शून्य हो गया था। तो भी जन्म-जात संस्कार अन्तः करण में सिसक रहे थे।

कालीदेवी ने कहा था "नग्न साधु के उपदेश के निमित्त से राज्य पर बहुत बड़ा संकट आवेगा।" राजा तभी से इसी धुन-बुन में लगा था कि क्या उपाय किया जाय ? यह योजना किस प्रकार लागू की जा सकती है यह एक बड़ी पेचीदी समस्या बन गयी थी। वह विचारता है कि जैनाचार्य को यहाँ पधारे दो महीने हो गये, परन्तु उसने राज्य विरोधी कोई प्रचार नहीं किया, मेरे विरोध में भी कुछ नहीं किया और न ही राज्य में असन्तोष हो ऐसा ही कोई काम किया है।" इस परिस्थिति में उस निरपराध साधु को अपने राज्य से निकालने का प्रयत्न करना या उस पर कोई असत्य आरोप लगाना, क्या यह अन्याय नहीं होगा ? अत्याचार नहीं होगा ?

अवश्य होगा। यह वह भले प्रकार जान रहा था। राजधानी के अनेक जैन लोग उनके भक्त बन चुके हैं। प्रतिदिन उनका धर्मोपदेश सुनने जाते हैं, मुनिराज के विषय में उनका अगाढ आदर व श्रद्धाभाव है। इस हालत में मेरे द्वारा मुनिमहाराज को किसी भी प्रकार का कुछ त्रास-दुःख देने का प्रयत्न हुआ तो निश्चय ही प्रजा मेरी विरोधी हो जायेगी और उससे ही राज्य पर भारी संकट आ जायेगा। इस चिन्तना से पद्मनाभ को बहुत भय लग रहा था। पर करे क्या? कोई भी विचार स्थायी नहीं रह पा रहा था। रह-रह कर उसे लगता कालीदेवी का वचन ही सत्य है। वह अन्यथा नहीं हो सकता। जो देवी बोलती है वही होता है, कभी गलत नहीं हो सकता।' इस प्रकार कभी इधर झुकता तो कभी उधर झूलने लगता।

वेग से प्रवाहित नदी का जल जिस प्रकार किसी विशाल वृक्ष को या पाषाण को मार्ग में पाकर दो भागों में बंट जाता है, वही दशा इस समय पद्मनाभ के मनोवेग की हो गई। क्या करना यह उसे सूझ ही नहीं पड रहा था। देवी का सन्देश सुनने के बाद इसी दुविधा में श्रावण मास पूरा हो गया था। अब भाद्र पदमास का पर्व भी प्रारम्भ हो गया। वर्षाकालीन नदी की बाढ समान गुरुदर्शकों की संख्या बढने लगी। उपदेशामृत पान करने को राजघराने के भी बहुत से परिवार आने लगे। वे लोग अपने घर जाकर मुनिराज का गुणगान करते थे। मृगावती ने उनके यशस्वी, प्रभावी उपदेश के विषय में सुना तो उसका मन भी मुनिदर्शन को लालायित हो उठा। पिछली संध्या को रथ में सवार राजपुत्र से भेंट की घटना से वह अधिक व्यग्र हो उठी। क्योंकि मुनिदर्शन को जाने से अवश्य पुनः उससे भेंट हो सकती है। अनायास उससे मिलने का अवसर प्राप्त होगा। यह उसे आशा थी। परन्तु, मुनि दर्शन को जाना कैसे? यह विचार आते ही उसे स्मरण आया कि, "हमारे पूर्वज पहले मन्दार पर्वत पर जिनेन्द्र पूजा करने जाते थे। पर्व तिथियों में मल्लिनाथ जिनालय में अभिषेक-पूजा विधानादि महोत्सव करते थे।" ऐसा उसने कई बार सुना था। राजघराने की स्त्रियाँ बराबर वहाँ भक्ति, दर्शन, पूजा निमित्त जाती थीं। इस निमित्त को लेकर दूसरे ही दिन उसने अपनी माँ से इस विषय की चर्चा निकाली। रानी मुरादेवी की जिनपूजा करने की व महोत्सव देखने की भावना न हो ऐसी बात नहीं थी। परन्तु उसके मन में था कि पद्मनाभ महाराज को यह विचार पसन्द नहीं आयेगा यही सोचकर मृगावती को इस विषय में कुछ उत्तर नहीं दिया।

परन्तु मृगावती ने माँ की मौनसम्मति ज्ञात कर पिता के पास इस विषय में अनुमति-आज्ञा चाही।

मृगावती एक ही कन्या होने से सबको बहुत दुलारी थी। सबको अच्छी लगती थी। उसके मन के विरुद्ध प्रायः कुछ भी नहीं करता था। मृगावती प्रसन्न और सुखी रहे यही सबका सतत प्रयत्न रहता था। इस समय पहाड़पर जाने की उसकी तीव्र इच्छा जानकर राजा के गले में भारी फन्दा पड गया। क्योंकि मृगावती का हठ उसे ज्ञात था। वह जब भी जिस काम की हठ पकडती उसे किये बिना नहीं रहती। इस बात का राजा को पूरा अनुभव था। यदि उसे उसकी इच्छा प्रमाण आज्ञा देता हूं तो कालीदेवी कुपित होगी, उसकी अनुकम्पा का भय उसके हृदय में नाचने लगा। पुनः विचार कर राजा ने, अतिप्रेम से कन्या को अपने अङ्क में ले कहा "मृगावती ! तू बाहर देवी के मन्दिर में तो जाती ही है, पहाड पर भला क्या है ? मात्र पहाड पर चढने से तुझे बहुत त्रास होगा। इसलिए वहाँ नहीं जाना।" ठीक है पहाड पर जाने से त्रास होगा तो मार्ग में ही मुनिराज हैं उनके दर्शन कर आ जाऊँगी।" बीच में ही मृगावती बोली।

"देवी के सन्देश की बात महाराज ने किसी से भी नहीं कही थी। इससे मृगावती को यह मालूम नहीं था कि मुनिदर्शन का कोई प्रतिबन्ध हो सकता है। अतः उसने सहज ही यह भाव प्रकट किया। राजा ने उसके मुख से मुनिदर्शन की इच्छा शब्द सुना तो सन्न रह गया। क्योंकि उसे विश्वास था, यदि मृगावती मुनिदर्शन को गई तो देवी का अवश्य प्रकोप होगा। वह कुपित हुए बिना रह नहीं सकती। यह भय उसे खा रहा था। यही सोचकर वह कन्या को पहाड पर भी भेजने को तैयार नहीं था। परन्तु उसने जबर्दस्त हठ पकड कर एक कठिन समस्या उपस्थित करदी थी। मृगावती के प्रश्न से राजा में द्वैदीभाव जाग उठा। उसका कहना यथार्थ था, "पहाड पर जाने से त्रास होगा तो मुनि दर्शन को जाने दो उसमें तो कष्ट नहीं है।" ये दोनों बात टालने को नहीं हो सकती। यही विचार कर राजा बोला, बेटी तेरी इच्छा पहाड पर पूजा देखने की है तो जा मेरा कोई विरोध नहीं है। परन्तु वहां मुनिदर्शनों को जाने का कोई काम नहीं। क्योंकि उस प्रकार के नग्न मुनि का दर्शन करने से और उनका उपदेश सुनने से अवश्य ही कालीदेवी का कोप होगा। और उस कारण से

सभी को भयङ्कर कष्ट उठाना पड़ेगा। यही विचार कर मैं तुम्हें वहाँ जाने से रोकता हूं। मेरा और कोई भाव नहीं।"

पिता के मुख से निकले शब्द सुन कर मृगावती कुछ म्लान सी हो गई। यही नहीं उसे कुछ आश्चर्य भी हुआ। देवी के कोप का परिणाम क्या क्या होता है यह भी उसने अनेकों बार सुना था। अतः उसे भय लगा। परन्तु तो भी वह तुरन्त बोली—

"पिताजी! प्रतिदिन हजारों लोग मुनिदर्शनों को जाते हैं, उनका उपदेश भी सुनते हैं, उन पर देवी का कोप क्यों नहीं हुआ? किसी भी साधु का उपदेश सुनने से देवी के कोप का कारण क्या है? क्यों देवी रुष्ट होवे? मुझे यह नहीं पटता। मैं उस साधु के भी दर्शन करूंगी और पहाड़ पर भी जाऊंगी।" इस प्रकार गाल फुलाकर मृगावती लाडपने से बोली।

मृगावती का यह रोष भरा भोला, दुलार से युक्त उत्तर सुनकर हर दिन के समान आज पद्मनाभ हंसे नहीं, और न उसके विपरीत उस पर चिड़चिड़ाहट या मधुर कोप ही दिखाया वे एक-दम आँखें फाड़कर लालताते होकर बोले—

मृगावती, इस समय तुम कोई बिल्कुल नादान बच्ची नहीं हो। प्रत्येक बात का हठ पकड़ना यही तुझे मालूम होता है? नग्न साधु का उपदेश सुनने से देवी का कोप होगा या नहीं यह तुझे आज ही समझ में आ सकेगा क्या? बड़े आदमी की बात पर कुछ तो विश्वास करना चाहिए? जा, यदि तेरी इच्छा ही है तो मात्र पहाड़ पर जाकर आ "इस प्रकार कह कर राजा ने अपनी दृष्टि दूसरी ओर फेर ली।"

राजा के इस प्रकार रूखे जवाब से मृगावती कुछ घबरा गई। क्योंकि राजा कभी भी इस प्रकार कोप से उससे नहीं बोले थे। वह अधिक समय वहाँ नहीं ठहरी, शीघ्र ही उतनी मात्र आज्ञा लेकर चट पट रणवास में चली गई अर्थात् अन्तर्गृह में मां के पास गई और सभी वृतान्त अपनी माता को सुना दिया।

उस दिन दोपहर को मृगावती अपनी माता के साथ रथ में सवार हो मन्दार पर्वत पर पूजा देखने को जिनमन्दिर जाने को निकली। प्रतिदिन देवी के मन्दिर की ओर जाने वाले घोड़ों को आज पहाड़ की ओर घुमाना पड़ा। थोड़े ही समय में रथ पहाड़ की तलहटी में पहुँचा, वहीं से पहाड़ पर चढ़ने

का मार्ग था, वहीं जाकर रथ खड़ा हो गया। पहाड़ भी कोई अधिक ऊँचा नहीं था। नीचे तलहटी से ऊपर तक पत्थर की सीढ़ियाँ बनी हुई थीं। इस-

लिए ऊपर जाने–आने में कोई अधिक कष्ट नहीं होता था। मृगावती और मुरादेवी पहाड़ पर आराम से चढ़ गईं। वहाँ से नीचे की ओर देखने पर सामने ही घूम कर मल्लिपुर नगर दिखता था, वहाँ के ऊँचे–ऊँचे महल–मकान राजवाड़ा बड़े ही सुहावने लगते थे। मन्दिरों के शिखर अनोखे भासते थे। दूसरी ओर देवी का मन्दिर, उसके सामने विशाल मैदान, दूसरी ओर हरा–भरा मैदान वह सब देखकर मृगावती को बहुत ही आनन्द हुआ। मैं आज तक कभी इस रमणीक पहाड़ पर नहीं आयी, आज तक मुझे इस अपूर्व सौन्दर्य से वंचित रहना पड़ा यह विचार कर उसे कुछ खेद भी हुआ। इतनी स्वाभाविक शोभा देखते–देखते वह जिनालय की ओर चली जा रही थी। वहाँ पूजा अभिषेक देखने को सैकड़ों लोग एकत्रित थे। यह मन्दिर सुन्दर काले पाषाण से निर्मित था। सामने का कुछ तट मात्र जीर्ण–शीर्ण हो पड़ गया था। सभा मण्डप के खम्भों और छत पर नाना प्रकार की नक्कासी–चित्रकारी सुन्दर ढङ्ग से उकेरी व चित्रित की गई थी। मृगावती ने यह मन्दिर आज तक कभी देखा ही नहीं था। नीचे से उसका टूटा–फूटा,

ऊबड़–खाबड़ शिखर दिखता था इसी से मृगावती को उसे देखने की कभी इच्छा ही नहीं हुई थी। आज प्रत्यक्ष देख कर उसकी बाहरी कल्पना चूर–चूर हो गई। अत्यन्त प्राचीन कालीन शिल्प कला, भव्य मण्डप और देवालय की सुन्दर रचना पद्धति कला विज्ञान देख कर वह बहुत ही चकित हुयी। यह सब देखती–देखती वह गर्भ गृह के समीप जा पहुँची। आज राजरानी और राजकन्या मल्लिनाथ भगवान के दर्शनों को आयी, देख कर सभी लोगों को अजीब, अनोखा सा प्रतीत होने लगा। कितने ही लोगों ने उनका उचित आदर–सम्मान कर पूजा देखने का आग्रह किया। मृगावती ने आज तक कालीदेवी के मन्दिर के सिवाय कोई देवालय नहीं देखा था। "देवता कैसा होता है ?" इस विषय में वह आज तक यही समझती थी कि "काली, विकराली, जिह्वा निकाले, शस्त्रधारी, ऐसी ही मूर्ति होती है।" यही भयङ्कर रूप देव–देवी का होता है। ऐसी ही उसकी धारणा थी। परन्तु आज उसे लगा कि वह बहुत बडी भूल में है। उसने अन्दर गर्भ गृह में–दृष्टि डाली और देखा कि एक सुन्दर सिंहासन पर अति सादा, सुन्दर, शान्त मनोज्ञ वीतरागी एवं भव्य केशरी वर्ण पाषाण की कोई प्रतिमा विराजमान है। एकदम मनुष्याकार वह मूर्ति है यह देख कर उसे अपार आश्चर्य हुआ। क्योंकि प्रथम बार उसने ऐसी प्रतिमा के दर्शन किये थे। उसने आश्चर्य और आतुर प्रश्न भरी दृष्टि से शीघ्र ही अपनी माता की ओर पीछे मुड कर देखा परन्तु मृगावती कुछ बोली नहीं। तो भी उसके मन में क्या कल्पना आयी यह उसने उसी समय ताड लिया। रानी की समझ में आगयी उसकी कल्पना। पन्द्रह वर्ष पूर्व रानी मुरादेवी इस पहाड पर अनेक बार दर्शन, पूजन, भक्ति करने आती थी। अनेकों बार उसने पूजा–विधान भी किया था। परन्तु सन्तति की आशा से उसने अपना कुल धर्म त्याग काली देवी की सेवा पकड ली और उसके बाद ही मृगावती का जन्म हुआ था। अतः इसका आयुष्य कर्म प्रबल था सो जीवन्त रह गई। फलतः देवी की भक्ति विशेष रूप से करने लगी। आज पन्द्रह वर्ष की अवधिनन्तर यह वीतराग सुन्दर प्रतिमा देखते ही एक क्षण में उसके समस्त भाव बदल गये और उसके नयन कोरों में तत्क्षण मोती से दो अश्रुबिन्दु चमकने लगे। मृगावती को पीछे कर, आगे लपक कर आई और झुक कर जमीन में मस्तक लगा श्री मल्लिनाथ भगवान के दर्शन बडी भक्ति से किये। मृगावती ने भी उसी प्रकार दर्शन किये और उसी समय वहां पूजा–अभिषेक देखने को बैठ गयी। मृगावती निश्चल एकाग्रता से एक मूर्ति समान अचल हो उस प्रतिमा को निहारती ही रही।

उसका लक्ष पूजा की ओर तनिक भी नहीं था। क्योंकि अपलक नयन जिन बिम्ब की ओर लगे थे। इस—निर्विकार वीतराग मूर्ति और काली देवी की विकराल मूर्ति के रूप में उसके मन में द्वन्द चल रहा था। उस सम्बन्धी अनेक प्रश्न उसने अपनी माता से किये, बार—बार उसे सता रही थी, परन्तु इतने लोगों के बीच उनकी शान्ति भंग करने का साहस मुरा देवी को नहीं हुआ। सैकडों जैन पूजा देखने को समन्वित थे वहाँ के स्त्री—पुरुषों को अशान्ति होगी यही सोच कर वह चुपचाप बैठी रही। उधर मृगावती के हृदय में अनेकों प्रश्नों का जाल बिछा जा रहा था।

पूजा के समाप्त होते ही बहुत से लोग नीचे मुनि दर्शन को गुहा की ओर चल दिये। मृगावती व मुरादेवी रानी की भी उधर ही जाने की तीव्र इच्छा थी परन्तु पद्मनाभ राजा कहीं रुष्ट न हो जाय इस भय से उधर न जाकर वे सीधी अपने रथ की ओर ही उतर कर आने लगीं। जिनदर्शन करते ही रानी का मन परिवर्तित हो गया था। मृगावती के मन में भी अनेकों विचार तरंगें उठ रहीं थीं। बीच-बीच में वह धीरे-धीरे मुनिवासतिका गुफा की ओर देखती जाती थी। मण्डप में हजारों लोग जमा थे। कल देखा हुआ रथ भी वहीं कहीं होगा ऐसा उसका विश्वास था। परन्तु इधर उधर कहीं भी रथ नहीं दीखा। इससे उसे बहुत निराशा हुई। विषण्णचित्त वह राजावाडा की ओर आगई। रानी का मन भी बहुत उदास था। हमने अपनी पूर्व परम्परा को छोड़ दिया, हिंसा मार्ग स्वीकार किया, तो भी हमें पुत्र सुख नहीं प्राप्त हुआ, हमारा मार्ग विपरीत हुआ क्या ! ऐसी शङ्का उसके मन में घुमडने लगी। देवी के महात्म्य के प्रति उसके मन में धुंधला सा अविश्वास उत्पन्न हुआ। उसके मन में इतना द्वन्द छिडा कि उस रात्रि को उसे निन्द्रा नहीं आई, सिर दर्द भयंकर होने लगा और हल्का सा ज्वर ही आ चढा। पुनः पाँच छः दिन तक उसकी प्रकृति अच्छी नहीं हुयी।

मृगावती का मन रथ में अटका था। अतः दूसरे दिन माँ के अस्वस्थ होने पर भी वह अपनी एक सखी को लेकर रथ को देखने की आशा से पर्वत पर चली गई। राजपुत्र के दर्शन को वह पगली सी हो रही थी। उसी प्रकार श्री जिनदर्शन का आनन्द भी उसे अपूर्व आनन्द दे रहा था। फलतः वह प्रतिदिन श्री मल्लिनाथ स्वामी के दर्शनों को जाने लगी। पहाड से उतरते समय बहुत ही आतुरता से वह मण्डप की ओर भी दृष्टि फेर कर देखती थी। परन्तु आठ दिन तक उसे वह रथ कहीं भी दृष्टिगत नहीं हुआ। उसे अत्यन्त निराश ही होना पडा। अब वह पूर्ण अधीर हो गयी थी।

पितृ आज्ञा का उल्लंघन-५

आ० महाराज श्री का चातुर्मास अप्रमादना चल रहा था। माणिकदेव पुरोहित के गुप्तचर भी चारों ओर भिन्न-भिन्न वेष बना धारण कर मल्लिपुर के चारों ओर सर्वत्र घूमते थे। महारानी और मृगावती के पहाड़ पर जाकर आने की बात भी उसे उसी दिन विदित हो गई थी। यही नहीं, दूसरे दिन से रानी आजारी बीमार हो गई और मृगावती अकेली ही सखी के साथ पहाड़ पर गई यह सब समाचार उसे मिल गया था। सन्धि का सही उपयोग करना यह तो उस जैसे धूर्त का पहला काम था। यह कोई सहसा करने का काम नहीं था। वह तो एक महीना पहले ही महाराज को सूचना दे चुका था। क्योंकि वह जानता था कि आचार्यजी के उपदेश का लोगों पर अवश्य प्रभाव होगा। इसलिये राजा को सावधान किया था। पुरोहित को आशा थी कि देवी का सन्देश पाकर राजा अवश्य जैनमुनि के प्रतिबन्ध का कोई उपाय करेगा। उनका उपदेश नहीं होने देगा। उनके उपदेश सुनने वालों को कोई ताकीद, या धमकी देगा, उन्हें जाने से रोकेगा। कदाचित अपनी बेटी को जाने देखकर तो अवश्य ही वह मुनि को नगर बाहर ही निकलवा देगा। मल्लिपुर कहीं उसे कोई स्थान नहीं दे ऐसा उपाय करेगा राजा। ऐसा विश्वास कर ही माणिकदेव पुरोहित बैठा था। परन्तु उसकी सारी कामनाएँ निरर्थक हो गई। महीना, डेढ़ माह निकल गया परन्तु राजा ने इस विषय में कोई लक्ष्य नहीं दिया। इसके विपरीत मुनिराज के भक्तों की संख्या ही दिन पर दिन बढ़ रही थी। अब तो भीड़ का ठिकाना ही नहीं था। इतना ही नहीं पन्द्रह वर्षों से एक दिन भी नहीं जाने वाली रानी भी अपनी पुत्री को साथ ले जाकर दर्शन करने लगी। जिनदर्शन और मुनि-दर्शन एवं उपदेश का प्रभाव देख माणिकदेव के प्राण पखेरू उड़े जा रहे थे। वह रात-दिन इसके विरुद्ध उपाय करने की धड़-पकड़ में लग रहा था। क्या करे क्या नहीं यही उसके विचार चल रहे थे।

आज पुरोहित जी बहुत जोश में थे। सोचा राजा से जाकर मिलना चाहिए और उसे पूरी तरह भयभीत करना चाहिए। इसी अभिप्राय से यह

राजमहल में जा धमका । यह पर्यु षण का अन्तिम दिवस बाद पूर्णिमा का दिन था । इससे पहाड़ पर हजारों लोगों का समूह चला जा रहा था । सभी मुनिराज की वसतिका की ओर आनन्द से चले जा रहे थे। प्रतिदिन के समान मृगावती भी पहाड़ पर गई थी ।

पुरोहित महाराज जिस समय राजमहल में पहुँचा, उस समय राजा पद्मनाभ बहुत ही उदास चित्त कोई गहरे विचार में बैठा हो ऐसे बैठा था । पुरोहित को देखते ही राजा ने भाव बदल हँसमुख होकर उसका सत्कार किया । उपहास पूर्वक हँसते हुए ही पुरोहित ने आसन स्वीकार किया, एवं गम्भीरता पूर्वक उधर दृष्टि कर राजा की ओर देखा तथा कहने लगा— महाराज रानी साहिबा की प्रकृति ठीक है न ?

प्रश्न सुनते ही राजा का चेहरा एकदम फीका हो गया—उतर गया । वह धीमें स्वर में बोले, "परन्तु आपको यह कैसे विदित हुआ ।"

"मुझे ?" थोड़ा अकड़ता, आश्चर्य से पुरोहित बोला, "जिस दिन रानी पहाड़ पर जाकर आई थी उसी दिन उनका स्वास्थ्य खराब हो गया था, देवी के सान्निध्य में रह कर क्या मुझे इतना भी ज्ञात नहीं होगा ? ठीक है, देवी की आज्ञा की आपको तनिक भी परवाह नहीं, ऐसा प्रतीत होता है, लेकिन भूलना नहीं ? वह कोप सामान्य नहीं, तुम्हारा सत्यानाश का कारण अवश्य ही बन कर रहेगा । इसके सिवाय रह नहीं सकता । यह आप एक बार अच्छे से सुन लो ! मैं ठीक कर कहता हूं तुम्हारा सर्वनाश बच नहीं सकेगा ? समझे ?" इस प्रकार पुरोहित ने धैर्य से धमकी दी ।

"परन्तु हमारी ओर से देवी का क्या अपराध हुआ ? देवी की आज्ञा के बाहर" महाराज घबरा-घबरा कर बोलने लगे, परन्तु पुरोहित ने राजा की ओर लक्ष्य न देते हुए बीच ही में कहा, "जैनमुनि के निमित्त से तुम्हारी राजधानी में बड़ाभारी संकट आने वाला है ।" ऐसा आपने प्रत्यक्ष देवी के मुख से क्या सुना नहीं ? इतना होने पर भी देवी के अनेक भक्त मुनि के पास जाते हैं, इसका आपने कोई बन्दोबस्त नहीं ही किया, और उलटे पन्द्रहवर्ष से कभी भी नहीं जाने वाली आपकी रानी भी अपनी कन्या के साथ पहाड़ पर जाकर आई ! इसी पर से स्पष्ट होता है कि आप देवी की आज्ञा का कितना पालन कर रहे हैं ?"

"किन्तु" राजा अति विनय से बोलने लगा "यह सब मृगावती के बालहठ पने का परिणाम है। जान बूझ कर मैं पहाड की ओर जाने की उसे आज्ञा देता यह क्या तुम्हें लगता है? मैं उसे प्रोत्साहन देता क्या? वह केवल प्राकृतिक सौन्दर्य मात्र अवलोकन करने के अभिप्राय से पहाड पर जाकर आती है। मृगावती पहाड की नैसर्गिक सुषमा देख प्रसन्न होती है।"

"लेकिन, देवी की आज्ञा की अपेक्षा न करते हुए यह मनोरञ्जन सदैव को समाप्त हो जायेगा इसकी आपको जरा भी भीति नहीं? यह चलाया राग रंग एक दिन जड से भंग होगा, इसका भय नहीं?" पुरोहित ने पूरे अधिकार के स्वर में डाटकर कहा। प्रश्न किया।

"छिः छिः ऐसा कैसे कहते हो? देवी जी की कृपा है इसीसे तो हम सब सुखी हैं। इसी के चलते ही मृगावती को शक्त आज्ञा दी है कि, पहाड पर गई तो कोई बात नहीं परन्तु मुनि दर्शनों को कभी जाना ही नहीं। और इसी प्रकार हमारी मृगावती उधर जाती नहीं। इसकी मुझे पूरी जानकारी है। इस प्रकार विनती करके राजा पुरोहित को समझाने का प्रयत्न करने लगे।

सर्वसत्ताधारी राजा, तो भी पुरोहित द्वारा मनगढंत कल्पना से बनाई देवी के स्वरूप की रूपरेखा से भयभीत होकर, एक दीन-हीन भिखारी की भांति उसे प्रार्थना कर प्रसन्न करने की चेष्टा कर रहा था। संसार में इस प्रकार की अनेकों मायाचारी की गोष्टियाँ हुआ करतीं हैं, जिनके सम्बन्ध से ज्ञानी भी कर्त्तव्याकर्त्तव्य बिमूढ हो जाते हैं। तथ्य क्या है? इसे समझने वाले अत्यन्त अल्प जन ही हुआ करते हैं।"

जिस समय राजा और पुरोहित का यह संवाद चल रहा था उस समय मृगावती पहाड ही पर थी। वह चारों ओर चिन्ताकान्त होकर निहार रही थी। परन्तु शून्यदृष्टि रह इधर-उधर देखती बैठ गयी। दशलक्षण पर्व का यह अन्तिम दिवस था, इस कारण उस दिन लोगों की बहुत ही गर्दी-भीड जमा हो रही थी। मृगावती पूर्ण स्वस्थ नहीं होने से अभिषेक-पूजा करने या देखने को नहीं बैठी। मात्र जिनेन्द्र भगवान का दर्शन कर शीघ्र ही मन्दिर के बाहर आ गई। कुछ दूर एक रम्यस्थली में बैठकर अपनी सखी से बातें करने लगी। मृगावती के आचरण में इस प्रकार का अन्तर

क्यों—हुआ ? यह उस चाणक्ष सखी ने उसी समय ताड लिया था और उसकी उदासी को दूर करने का वह प्रयत्न भी करती रही। उसे बहुत कुछ पूछा भी लज्जावश मृगावती इधर-उधर की व्यर्थ बातें बनाकर टलमटोल करती हुयी रह जाती। मृगावती अपने अन्तःकरण छुपाने का प्रयत्न करने लगती। आज भी उन दोनों का इसी सम्बन्ध में विनोद चल रहा था। मृगावती बीच-बीच में पहाड की ओर आने वाले मार्ग पर दृष्टि डालती जा रही थी। सखी क्या बोल रही है उस ओर उसका अधिक लक्ष्य ही नहीं था। इसी समय वह बेहताश सी रास्ते की ओर उंगली से इशारा करती हुयी झट से हर्षित हो बोल उठी, "वह, वह देखो वही रथ आ रहा है।" वह क्या कह गई उसे स्वयं को ही भान न रहा। सहसा बोल दी।

"कहाँ का ? कौन का ? वह रथ ?" आश्चर्य से उधर देखते हुए सखी ने प्रश्न किया। उधर से आते हुए रथ पर ही उसकी दृष्टि लगी थी। सखी का प्रश्न सुनकर मानों होश में आई मृगावती और जीभ को दाँतों के बीच दबा उसने अपना मुख दूसरी ओर कर लिया। उसके कपोलों पर हास्य की एक मादक, मधुर कली सी हास्य छटा बिखर गई। ऐसा क्यों हुआ ? यह उसकी सखी ने तत्क्षण जान लिया। मृगावती ने भी संकोच छोडकर स्पष्ट रूप से इस विषय को अपनी सखी को खुलासा कर दिया। इस प्रकार बात चीत कर वे दोनों हंसी मजाक करती हुयी, पर्वत से नीचे उतरने लगीं। उतरते समय में मृगावती का एक-दो बार संतुलन ही बिगड गया था अर्थात् जहाँ-तहाँ पाँव पडे। इतनी उतावली से वह धमाधम पैर रखती उतरने लगी।

पहाड की तलहटी के नजदीक से उसने देखा कि वह रथ भी सर-सर आकर मण्डप के सामने जाकर ठहर गया। उधर जाने के लिए मृगावती ने मुख उधर ही किया। उसी समय उसे अपने पिता के वचनों का स्मरण भी हो गया। एक दम रुक गयी। उसके चेहरे पर एक हलकी सी चिन्ता रेखा चमक कर बिखर गई। गुलाब की कली सा खिला चेहरा थोडा म्लान हो गया। उसने अपने पिताजी की आज्ञा क्या है, यह सखी को बताई। और उससे सलाह देने की मांग की। वह भी सुनते ही चिन्ताग्रस्त हो गई। गुम-सुम सी खडी रह गई। कुछ समय विचार कर मृगावती बोली, "आज का यह पर्व का अन्तिम दिवस है। पर्व के निमित्त से ही मुझे इन सात-आठ दिवसों को पर्वत पर आने की आज्ञा मिली है। आज यदि मैं मण्डप की ओर

नहीं गई तो फिर मुझे उसका (राजकुमार का) दर्शन करने की सन्धि कभी भी मिलने वाली नहीं ! सखे ! क्या कहूं ? उसके एक ही कटाक्ष से मेरी यह हालत हो गई है कि मेरा मन मेरे अधिकार में ही नहीं रहा है। वह कौन है ? इस सम्बन्ध में कुछ भी जानकारी हो तभी मेरा मन समाधान पा सकता है, शान्त हो सकता है। मुनिवास को जाने की खबर यदि पिताजी को हो गई तो कल से निश्चय ही यहाँ आना मेरा बन्द कर देंगे। यह सत्य है। परन्तु तो भी यदि आज का अवसर चूक गया तो फिर कल आने से भी क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ? क्या करूं ?...........सखे ! पिताजी की आज्ञा उलंघन नहीं करना, यह बराबर उचित है परन्तु"—इतना बोल कर अपनी साडी का पल्ला इधर-से-उधर हिलाती हुयी विनोद के साथ नीचे को ओर देखने लगी। उसके मन की इस प्रकार की अवस्था देखकर उस सखी ने भी उसे सम्मति प्रदान की। तथा, कुछ लजाती सी वे दोनों ही मण्डप को ओर चल पडीं।

अहिंसा अपनाओ

देश, जाति, समाज को बचाओ

तरुणों की प्रतिज्ञा—६

मण्डप का ढंग अनोखा था। एक तरफ स्त्रियाँ और दूसरी ओर पुरुष बैठे थे। मण्डप खचाखच भर चुका था। मध्यभाग में पाषाण सिंहासन पर आचार्य श्री अमरकीर्ति जी विराजमान थे। उस चबूतरे के पास ही राजकुमार महेन्द्र बैठा था। और बांयी ओर स्त्रीसमुदाय में अपनी सखी सहित नीचे गर्दन झुकाये मृगावती बैठ गई। मण्डप भर जाने से कितने ही लोग बाहर खड़े थे। महाराज श्री का उपदेश प्रारम्भ हो गया था। सभी लोग बड़ी शान्तता से सुन रहे थे। आज महाराज पद्मनाभ की राज कन्या महाराज के दर्शनों को आयी थी, इस कारण सभी को एक नवीन अचम्भा लग रहा था। कितनी ही स्त्रियाँ राजकुमारी मृगावती को तुच्छ दृष्टि से देख रहीं थीं। कितनी ही महिलाओं को उसके आने से बड़ा गौरव हो रहा था। बीच-बीच में मृगावती तिरछी नजर से, लोगों की आँख बचाकर महेन्द्र की ओर अपनी दृष्टि डाल रही थी। एकाद बार उसकी नजर युवराज की दृष्टि से भी टकरा गई, अर्थात् चार आंखें मिलगई। जिससे नीचे नजर कर उसके मन में विशाल तुमुल युद्ध चल रहा था। महेन्द्र युवराज का लक्ष्य मात्र आचार्य श्री के उपदेश की ओर लग रहा था।

"धर्म के नाम पर हिंसा करना कितना घोर पाप है" यह था आज का उपदेश का विषय। आचार्य श्री इसी विषय पर अपना मनोनीत सुन्दर भाषण दे रहे थे। उनके धर्मोपदेश का सारांश निम्न प्रकार है—

हे भव्य स्त्री पुरुषो ! आप सबको सुख की इच्छा है। और उस सुख की प्राप्ती के लिए रात-दिन आपकी धुन-बुन चालू है। सबका प्रयत्न भिन्न-भिन्न प्रकार का है। प्रत्येक का सुख प्राप्ति का मार्ग भी पृथक्-पृथक् है। इस लोक में सुख मिले और पर लोक में भी सुख प्राप्त हो ऐसी जिस की चाह है वह कोई भी अन्याय का मार्ग स्वीकार नहीं करेंगे। परन्तु जिन्हें अच्छे-बुरे की पहिचान नहीं है, न्याय और अन्याय का भेद नहीं मालूम है, अथवा पुण्य-पाप की पहिचान नहीं है, वे लोग स्वयं के सुख के लिए दूसरों का घात करने को तैयार रहते हैं। परन्तु, इस प्रकार दूसरे का घात कर,

प. पूज्य आ. १०८ श्री अमरकीर्तिजी महाराज द्वारा अहिंसा पर प्रवचन ।

उनके साथ छल-कपट कर, किंवा अन्याय से दूसरे का धनादि अपहरण कर सुख मिलने की आशा करने वालों का समाधान कभी नहीं होता । अर्थात् उन्हें सुख तिलमात्र भी प्राप्त नहीं हो सकता । दूसरों को सुखी बनाकर स्वयं सुखी होने की आशा करने की साधना, अपने पूर्वजों द्वारा उभयलोक के कल्याणप्रद साधन तत्त्व कहे गये हैं उनपर चलना ही धर्म कहा जाता है । उसकी ही धर्म संज्ञा दी जा सकती है । परन्तु इस समय इस प्रकार के अनेक धर्म और पन्थ चालू हो गये हैं की कौनसा मार्ग स्वीकार करने से अपना कल्याण होगा ? इसका प्रत्येक मानव को विचार करना चाहिए । क्योंकि "बिना विचारे जो करे सो पाछे पछताय ।" संसार विचित्र है और माया-जाल से भरा है, सच्चा सुख का मार्ग खोजना दुर्लभ है -

कुछ लोगों की धारणा है कि यज्ञ करने से, अथवा देवी-देवताओं को नरबली, पशुबली देने से सुख की प्राप्ति होगी । परन्तु थोडा सा भी यदि शान्त मन से विचार किया तो निश्चय ही यह सन्मार्ग नहीं दुर्मार्ग है यह आपको स्पष्ट विदित हो जायेगा । क्योंकि हमें जिस प्रकार सुखेच्छा है, उसी प्रकार पशु-पक्षी आदि प्राणियों को भी सुख की अभिलाषा है यही नहीं, अपितु सूक्ष्मतम कीडें, मकोडें, पतङ्गादि को भी सुखपूर्वक जीवित रहने की आकांक्षा बनी हुयी है । इस प्रकार भाव रखने वाले असमर्थ, निरपराध प्राणियों का घात कर उनकी बलि चढाने से अपना भला होगा क्या ? अपने को सुख मिल सकता है क्या ? कभी नहीं । जो कहते हैं इस सृष्टि का कर्ता ईश्वर है । वे विचार करें, जब ईश्वर ही जग निर्माता है तो संसार के प्राणी मात्र सर्व उसी की सन्तान हुयी । उसी ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए, उसी की सन्तान का घात कर-बली देना अर्थात् उसकी उत्पन्न की हुयी सन्तान को उसी के नाम पर बध करना, बली चढाना कितना विपरीत है यह कार्य, जरा आपलोग विचार करें । यह रूढी सही है क्या ? अपने अंग पर सूई या कांटा का चुभना भी हमें सह्य नहीं और उन बेचारे मूक पशुओं का छुरी से घात करना किस प्रकार सह्य हो सकता है ? फिर, यदि कोई ईश्वर है तो वह अपनी सम्पूर्ण सन्तानों पर समान प्रेम दिखावेगा । "मनुष्यों द्वारा पशुओं का बध कर मुझे बली चढें" ऐसा तो वह कभी भी मानने वाला नहीं हो सकेगा । क्योंकि वह सम्पूर्ण प्राणी मात्र का जन्मदाता है । प्रत्येक धर्म का मूल तत्व भी दया ही है । परन्तु इस सर्वश्रेष्ठ दयाधर्म का त्याग कर अज्ञानवश, क्षणिक सुख के आभास मात्र के हिंसामार्ग का अवलम्बन करने वाले अन्त में दुःखी हुए बिना रह नहीं सकते । जीव बली मांगने वाला

देव-देव ही नहीं हो सकता यह ध्रुव सत्य है। फिर भला धर्म के नाम पर हिंसा कैसी ? जो लोग मांस लोलुपी, स्वयं अपनी लोलुपता शान्त करना चाहते हैं वे ही पापी धर्म के नाम पर बलि का बहाना कर लोगों को अपने चंगुल में फंसाते हैं ऐसे ही लोग पशुबलि का प्रचार-प्रसार कर बेचारे भोले प्राणियों को नरक द्वार में गिरानें का प्रयत्न करते है। नाना प्रकार कपट नाटक कर-कर भोले लोगों की दिशाभूल करते हैं।

संसार में सभी जीव सुखी नहीं हैं। जिनका जैसा जैसा कर्म होता है उसी उसी प्रकार का सुख प्राप्त होता है, दुःख भी वैसा ही मिलता है। कर्मानुसार संसार की लीला है। इसीलिए तो सर्वत्र विषमता दृष्टिगत होती है। किसी को सन्तान नहीं है। तो किसी को सम्पत्ति नहीं, कोई रोगी पीड़ित है, तो किसी को वियोग जन्य वेदना की टीस बसी है, कोई दरिद्री है तो कोई शत्रुभय से भयभीत है, इस प्रकार एक दो नहीं हजारों प्रकार से प्रत्येक मानव दुःखी है-प्रत्येक प्राणी पीडित है। अभिप्राय यह है कि इन दुःखों का कारण जीव का पूर्वोपार्जित कर्म ही है। स्वतः का पाप कर्म ही दुःख का कारण होता है। आप विचार करिये, ऐसे पापकर्म का नाश क्या देवी-देवता को बलि देकर प्रसन्न करने से हो सकता है ? कभी होने वाला नहीं। फिर भला हमारे दुःख की निवृत्ति भी कैसे हो सकती है ? नहीं हो सकती। इसके बिपरीत दुःख का मूल कारण पापकर्म ही संचित होगा। क्या कीचड से कीचड धुल सकती है ? रक्त से रक्त से सना वस्त्र शुद्ध हो सकता है ? उसी प्रकार प्राणी पीडा-हत्या, बलि देने से दुःख का कारणीभूत पाप नष्ट हो सकता है ? "नहीं नहीं कभी नहीं" चारों ओर से आवाज आती है। आचार्य महाराज पुनः बोलते हैं भैया, इसके विपरीत उलटा पाप ही बढेगा। इसमें शंका नहीं। बन्धुजन हो, इस प्रकार के पाप का आज मल्लिपुर शिरमौर बन रहा है। यहां पर उपस्थित लोगों में से भी बहुत से लोगों ने देवी को बलि चढाकर उसे प्रसन्न करने का उपाय किया होगा, उसकी कृपा का पात्र बनने का उपाय अवश्य किया होगा, सुखी बनने की आशा की होगी। परन्तु ऐसा करने में आपकी गलती क्या है ? "यथा राजा तथा प्रजा" तुम्हारे राजा के द्वारा ही यह कुमार्ग प्रारम्भ किया गया है, तो आपका इसके पीछे पीछे चलना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

सम्पूर्ण प्राणियों का पालन-पोषण करना यह राजधर्म है। परन्तु मल्लिपुर का पद्मनाभ राजा अपना कुल धर्म छोड़कर विधर्मी हो गया।

कालीमाता की स्थापना की, पशुबलि चढ़ाने की प्रथा प्रारम्भ की, प्रत्येक वर्ष हजारों मूक प्राणियों का संहार चालू है, क्षुद्र स्वार्थ के लिए इस प्रकार का पशुसंहार क्या क्षात्रधर्म है ? वीर क्षत्रिय नरपुङ्गव इस प्रकार का निंद्य-कर्म-पापकर्म कभी भी नहीं कर सकते। क्योंकि क्षत्रियों का यथार्थ धर्म अहिंसा ही है। "अहिंसा धर्म की जय" एक बार सब बोलिये। मण्डप गूंज उठा "अहिंसा धर्म की जय" घोष से।

पुन: श्लोक बाद आचार्य श्री का उपदेश चालू हुआ। श्रोतागण तल्लीन हो गये। सभी चुपचाप कठपुतली सारीखे अचल एकाग्र चित्त बैठे थे। आचार्य महाराज कहने लगे "सच्चा धर्म अहिंसा ही है" यही सुख का कारण है, शान्ति का निमित्त है" इतना सुनते ही पुन: सबके मुख से एक साथ निकल पड़ा "अहिंसा धर्म की जय हो, "अहिंसा परमो धर्म: जयशील हो" इस प्रकार जयघोष हुआ। समस्त पहाड़ पर प्रतिध्वनि हुयी। मानों पर्वत ने भी समर्थन किया। इसके बाद पुन: आचार्य श्री ने मल्लिपुर में चलते हुए अनाचार और हिंसा का इतना हृदयस्पर्शी वर्णन किया कि सम्पूर्ण श्रोताओं के अङ्गप्रत्यङ्ग में रोमाञ्च हो गया कितनों ही के नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी। तथा कितने ही लोग अपने अतीत जीवन की 'हिंसा' वृत्ति का स्मरण कर पश्चात्ताप करने लगे। कितने ही पद्मनाभ राजा को दोष दे रहे थे। कितनों ने "हम सब आगे कभी भी इस बलि रूप पाप को नहीं करेंगे।" ऐसा निश्चय किया। महाराज श्री के प्रवचन-उपदेश के बीच-बीच में लोग "अहिंसा परमोधर्म:" इस प्रकार गर्जना करते जा रहे थे। यह अहिंसा का जयनाद मण्डप के बाहर निकला और उसकी प्रतिध्वनि से पूरा पर्वत निनादित हो उठा।

उन आचार्य श्री का सम्पूर्ण उपदेश मल्लिपुर की परिस्थिति के सम्बन्ध में ही था, उसी को लक्ष्य बना कर बोलने के कारण बीच-बीच में लोग ऊपर मुख कर राजकन्या की ओर देख रहे थे। बेचारी मृगावती गर्दन नीचे करे बैठी थी, उसने एक बार भी ऊपर गर्दन नहीं उठाई। इतना प्रभावशाली, स्पष्ट, यथार्थ निर्भय वक्तृत्व उसने जीवन में कभी नहीं सुना था। माणिकदेव पुरोहित को गर्वोक्तिपूर्ण भाषण के सिवाय उसने आज तक अन्य किसी का भी उपदेश नहीं सुना था। इस कारण उसे देवी का माहात्म्य और पूजाबलि इन दो बातों के सिवाय दूसरी कोई भी बात या क्रियाकलाप के विषय में जानकारी नहीं थी। इस समय श्री आचार्य महाराज का उपदेश

सुन कर उसके हृदय में अनेक प्रकार की भावनायें उथल-पुथल मचाने लगीं। अहिंसा की महिमा सुन कर उसने समझा कि मेरे पिता ने बड़ी भारी भूल की है। परन्तु इसके साथ ही माणिकदेव की अधिकारपूर्ण आवाज और देवी के कोप की भीति ने उसके मन को उद्विग्न कर दिया। उसका मन विचित्र प्रकार के उलझन में पड़ा जा रहा था। तो भी हिंसा कर्म से वह दहल रही थी।

मुनि दर्शन को आने वाली यह कन्या कौन हो सकती है? इसका उत्तर युवराज महेन्द्र ने तर्कणा से समझ लिया था। इसी कारण से वह बार-बार उसकी ओर देखता था कि आचार्य श्री के धर्मोपदेश का प्रभाव उसके मन पर कितना और कैसा पड़ रहा है। परन्तु मल्लिपुर के हिंसा काण्ड का वर्णन ज्यों ही प्रारम्भ हुआ कि उसने अपना शिर नीचा कर लिया और एक बार भी ऊपर दृष्टि नहीं उठायी।

महाराज श्री भी बहुत जोश में सिंह गर्जना कर रहे थे। हमारे उपदेश का प्रभाव लोगों पर बहुत अच्छा पड़ रहा है। यह जानकर उन्होंने अपनी आवाज एकदम धीमी करली। गम्भीर मुद्राकर उन्होंने चारों ओर दृष्टि घुमायी। पुनः सावकाश, शान्तता से बोलने लगे। लोगों की उत्सुकता अत्यधिक बढ़ रही थी। आचार्य श्री कहने लगे देखिये "अभी शीघ्र ही आश्विन शुक्ला प्रतिपदा से देवी का उत्सव प्रारम्भ होने वाला है, यह आप सब लोगों को विदित ही है, यदि आपको दया-धर्म-अहिंसा धर्म में रुचि है, उस पर आपको पूर्ण विश्वास है तो इस वर्ष देवी की बलि बन्द करना चाहिए। इतना बोल कर उन्होंने पुनः हर्षभरी दृष्टि चारों ओर फेंकी। सभा में से सैकड़ों लोगों की अविचल स्वर में आवाज आयी" नहीं, हम लोग इस वर्ष देवी को बलि नहीं देंगे। "किसी प्रकार भी हिंसा नहीं करेंगे।"

प्रफुल्ल मुखाब्ज महाराज पुनः बोलने लगे "आप बलि नहीं देंगे यह तो सही है, परन्तु बलि देने वाले अन्य अज्ञानी प्राणियों को भी इस हिंसा कर्म से विमुख करना चाहिये। सर्व सामान्य लोकों की बात क्या, किन्तु प्रत्यक्ष आपका राजा भी परावृत होना चाहिए, उसके मन को भी फेरने का प्रयत्न आप लोगों को अवश्य करना चाहिए। सबके मन पर अहिंसा का उपदेश बिम्बरूप से मिलना चाहिए। प्रसंग आने पर प्राणों की परवाह न करके इस कार्य को अखण्ड रूप से चलाने वाले वीरों का निर्माण होना चाहिए। हजारों निरपराध मूक प्राणियों को जीवनदान देने के लिए, अपने

स्वार्थ और क्षणिक सुखों को लात मारने वाले वीर मुझे चाहिए ? जिनकी ऐसी तैयारी हो उनको आगे आकर ऐसी प्रतिज्ञा करनी चाहिए। इस विषय में राजा की ही क्या अपितु प्रत्यक्ष यम की भाँति देखकर भी पीछे हटने का कारण नहीं। क्योंकि हजारों मूक प्राणियों-जीवों का जीवन बचाने के लिए हँसते हुए और शान्ति से प्रभुनाम के साथ आत्म-बलिदान करने वालों को कैसा ही भय आने वाला नहीं। ऐसा कोई वीर है क्या ?

आचार्य श्री ने प्रश्न के साथ ही एकबार फिर अपनी दृष्टि चारों ओर घुमाई। सर्वत्र स्तब्धता ! एक भी मुख से शब्द नहीं निकला। वे पुन: उपदेश देने लगे ',देखो ! अभी भी तुम देवी से भयभीत हो ! कि वा राजा का तुम्हें भय लगता है ? अभी भी विचार करो। जिसका दयाधर्म पर विश्वास है, जहाँ होने वाली हजारों पशुओं के संहार को रोकने की जिसके हृदय में कलबली है, अधर्म मार्ग पर लगे हुए अज्ञ, भोले बन्धुओं को यथार्थ सही मार्ग दिखाने की जिसको इच्छा है, ऐसा निःस्वार्थी वीर इस इतने विशाल जन समुदाय में एक भी नहीं क्या ? यह दुर्भाग्य की बात है।"

इतना बोलकर वे पुन: शान्त-चुप हो गये। इसी बीच में जनसमूह के मध्य से एक तेजस्वी तरुण खड़ा हो गया, सामने आया, सभी की दृष्टि इस नौजवान की ओर जा लगी। वह हाथ जोड़ कर बोला, "महाराज आपने जिस प्रकार जो करने को कहा है उस प्रकार करने की मेरी पूरी तैयारी है। इस यशस्वी कार्य के सम्पादन में मैं प्राणों की भी परवाह करने वाला नहीं।"

आचार्य महाराज को हर्ष हुआ। सभी सभासद विशेष आदरभाव से उसकी ओर देखने लगे। और पुन: एकबार अहिंसा का जय-जयकार गूंज उठा। उस जय-जय नाद की घुमड़ती प्रतिध्वनि पर्वत कणों से टकरा कर वायुमण्डल में बिखर गई। यह ध्वनि विलीन हो इसके पहले ही सातवीर और महाराज के सम्मुख करबद्ध आ खड़े हुए। उन आठों धर्मवीर नवयुवकों ने प्रतिज्ञा कर आचार्य श्री के दर्शन किये और सफलता का आशीर्वाद लिया।

सूर्यदेव अस्ताचल की ओर आ चुका था। उन आठ महावीरों के सम्मान और उत्साहवर्द्धन में फिर से सब लोगों ने जोर से "अहिंसा परमो-धर्म:" इस प्रकार जयघोष किया। धर्मोपदेश समाप्त हुआ। क्रमश: सब लोग मण्डप के बाहर जाने लगे।

आनन्द और दु:ख-७

जिस समय मृगावती अपनी सहेली के साथ मन्दार पहाड पर से उतर कर मुनिराज के दर्शनों को गई थी, ठीक उसी समय धूर्त माणिकदेव पुरोहित राजमहल में पद्मनाभ राजा के पास बैठा था। मृगावती मुनि-महाराज के पास जाने वाली नही यह जानकारी राजा ने जिस समय उसे दी थी, उसी समय मृगावती ने वहाँ नीचे जाकर मुनिराज के दर्शन किये थे। योगायोग ऐसा घटित हुआ कि किसी को इसकी कल्पना भी नहीं थी।

उस दिन का उपदेश भी गजब का था। लोगों का हृदयभेद अन्तस् में समा गया। सायङ्काल उपदेश सुनकर आने वालों के मुख से एकमात्र यही चर्चा चालू थी। मनुष्य मुनिराज की स्तुति करते फूले नहीं समा रहे थे। सर्वत्र अहिंसा धर्म का माहात्म्य सुनाई पड रहा था। सब लोग मण्डप से बाहर हो गये उस समय मृगावती को घेर कर बहुत-सी स्त्रियाँ खड़ीं थीं। उसके चारों ओर जमघट लग गया। अनेक महिलाएँ उससे नाना प्रश्न कर यह जानना चाहतीं थीं कि आचार्य श्री के उपदेश के सम्बन्ध में उसके विचार क्या हैं। उसका मत इस विषय में क्या है।

भीड कम होते ही महेन्द्र युवराज आचार्य महाराज के पास गये। वे प्रतिज्ञाबद्ध आठों वीर भी वहीं खडे थे। आचार्य श्री का उपदेश सुन राज पुत्र महेन्द्र को भी जोश आ चढा था। उसने हाथ जोड नम्रता से मुनिराज जी से प्रार्थना की, "गुरुदेव !, आपकी आज्ञानुसार काम करने को मात्र ये आठ ही वीर तैयार हुए हैं। परन्तु एक राजा का विरोध कर, इतने से लोगों से आपका कार्य सफल होगा। यह मुझे सम्भव नहीं लगता। यदि आप श्री की आज्ञा हो तो मैं सेनादल लेकर आऊँ, आपकी इच्छा पूरी करने को मैं पूर्णत: तैयार हूँ। राजा का विरोध कर सफलता पाना यह एक दो का काम नहीं। उसे सैन्य बल ही होना चाहिए। ऐसा मेरा विश्वास है।

"महेन्द्र राजकुमार की मुझ पर पूर्ण श्रद्धा-भक्ति है और मेरे इस

कार्य के लिए युद्ध करने को भी कटिबद्ध है" यह आचार्य श्री ने सम्यक् प्रकार ज्ञात कर लिया। 'किन्तु बिना युद्ध के यह कार्य सफल नहीं हो सकेगा' यह महेन्द्र की धारणा सुनते ही मुनिराज हँसने लगे। और बोले, "बेटे-कुमार! , इस कार्य की सिद्धि के लिए हमको सैन्य बल की बिल्कुल भी कोई आवश्यकता नहीं। ये हमारे आठ युवक हैं न ! ये ही कल और आठ वीर तैयार करेंगे। इस प्रकार आठ-आठ नए साहसी वीर यदि एकत्र हो गये और वे इस प्रयत्न में प्राणप्रण से लग गये तो समस्त जन समुदाय का परिणाम बदलने में देर नहीं लगेगी। पशुबलि रोकने के लिए युद्ध करने का अर्थ क्या ? रक्त से मल्लिपुर की भूमि को रंगना ? पशुसंहार के स्थान पर नर संहार ? नहीं नहीं यह कभी होने वाला नहीं।" आपका मन्तव्य ठीक है, परन्तु कदाचित् आपके हेतु प्रमाण युद्ध करके यश प्राप्त हो जाय, परन्तु जनता का हृदय परिवर्तन करना, शुद्ध अहिंसाधर्म की अमिट छाप उनके मन पर अंकित करने को नहीं हो सकेगा। बलि देना अधर्म है, यह पाप है ऐसा प्रत्येक के मन में आना चाहिये। तथा उनके हृदय में दयाधर्म के प्रति प्रीति-रुचि उत्पन्न होना चाहिए। तभी हम सफल हुए यह समझा जायेगा। अहिंसा का महत्व यदि एक बार लोगों के हृदय में जम गया तो फिर वे कभी भी सत्य से डिगने वाले नहीं, कभी हिंसा कर्म करने को तैयार नहीं हो सकते। "बच्चे ! लोहे से लोहा नहीं कटता, आग से आग नहीं बुझती।" इस प्रकार महाराज पूर्ण दृढता से बोल रहे थे। कुमार सुन रहा था। उसका रोम-रोम पुलकित था।

उस समय मृगावती यद्यपि स्त्रियों के झुण्ड में थी परन्तु उसका पूरा-पूरा ध्यान आचार्यजी के और महेन्द्र के बीच चलने वाले वार्तालाप की ओर ही लगा हुआ था। सैन्य युद्ध, इस प्रकार के कोई शब्द उसके कान में आये। इससे वह बहुत ही खिन्न हो गई थी। उस राजपुत्र चम्पानगर के राजा के युवराज की आचार्य श्री के प्रति प्रगाढ भक्ति है। काली देवी को बलि बन्द करने का इनका अभियान है। इसी के लिए वह आया है, इसके उद्देश्य से पिता ने उसे भेजा है यह समाचार मृगावती की सखी ने उसे स्पष्ट आकर समझाया। सर्व चर्चा कहदी।

कदाचित् बलिपूजा रोकने को राजपुत्र ने युद्ध किया तो मेरे वृद्ध पिता पर भयङ्कर सङ्कट आयेगा ही। इस प्रकार की भयातुर करने वाली शङ्का उसके मन में आई। मृगावती जैसी हठी थी वैसी ही डरपोक भी थी।

युद्ध और रक्तपात, इस बात की कल्पना से उसका शरीर थर-थर कांपने लगा। पैर लडखडाने लगे। अपने पिता के ऊपर युद्ध संकट न आवे इसके लिए इस राजकुमार से प्रार्थना करनी चाहिए। युद्ध किसी प्रकार नहीं छिडे यह उपाय करना चाहिए ऐसा उसने निर्णय लिया। तथा वह मण्डप से बाहर निकल कर अपनी सखी के साथ महेन्द्र के रथ की ओर चल पडी।

महेन्द्र युवराज के रथ के पास पहुँचते ही उसके मन में सावन के बादलों के समान अनेकों विचार घुमडने लगे। राजकुमार के यहाँ आने पर हम किस प्रकार उनसे बोलें, क्या बोलना, वह प्रथम बार हम से कुछ पूछेंगे क्या ? क्या बोलेंगे ? हम उनसे प्रार्थना करेंगी तो वह स्वीकार करेंगे कि नहीं ? इस प्रकार के अनेकों प्रश्न उस मृगावती के मन में आ रहे थे। उन विचार तरंगों में डूबी वह शून्य दृष्टि से रथ के पहिये के पास उस ओर देखती हुई खडी हो गई। वहाँ महेन्द्र कब आ गया यह उसे भान ही नहीं रहा।

अपने रथ के पास राजकन्या खडी है, उसे देख कर महेन्द्र को बहुत ही आश्चर्य हुआ। मृगावती रथ के पास पहुँचते ही अपनी गर्दन नीचे कर चुप-चाप खडी रही, वह बहुत संकोच कर रही थी। महेन्द्र ने अनुमान लगाया कि संभवत: यह मुझ से कुछ वार्तालाप करना चाहती हैं। इस प्रकार अवगत कर वह उससे बोला, "आपको कुछ कहना है क्या ?

मृगावती स्तब्ध हो थी, उसने अपनी गर्दन भी नहीं उठायी। परन्तु उसके नयन बरसने लगे, अश्रु धारा अविरल बहने लगी। उसके अश्रु बिन्दुओं को देखकर महेन्द्र हैरत में पड गया। राजकन्या को इतना दु:ख होने का भला क्या कारण हो सकता है ? इसका उसे कुछ भी कारण स्पष्ट नहीं हुआ। पुन: महेन्द्र ही बोला, "आपको इतने दु:ख का कारण क्या है ? कारण यदि मुझे मालुम हो तो...........।"

"कारण आपको विदित हुआ तो ?" मृगावती अश्रु पोंछते हुए—गद्-गद् स्वर में बोली चट से।" क्या मेरा दु:ख दूर करने का आप प्रयत्न करियेगा ? इस प्रकार कह कर उसने आतुरता से राजकुमार की ओर देखा।

"पर आपके दु:ख का कारण तो समझ में आये।" मृगावती ने पुन: नीची दृष्टि की, गर्दन झुकाली, और कुछ मुस्कराती सी बोली "कारण आप ही हैं, ऐसा यदि कहूँ तो आपको कोप तो नहीं होगा ?"

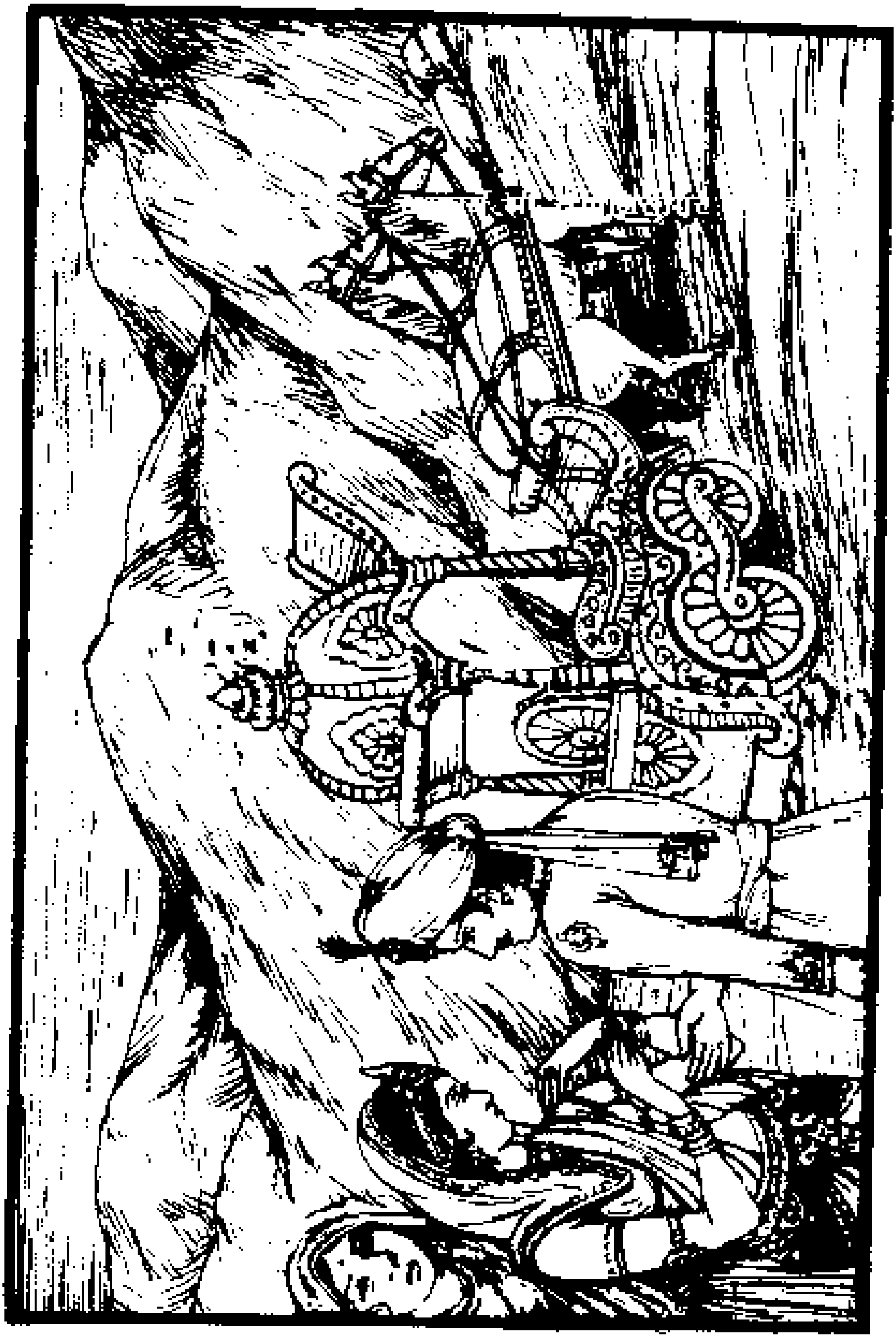

राजकुमारी मृगावती एवं राजकुमार महेन्द्र द्वारा प्रथम मिलन पर अंगूठी बदलते हुए।

मैं कारण ! आपके दुःख का मैं कारण ! मुझे आपके बोलने का कोई अर्थ ही समझ में नहीं आ रहा।" ऐसा कह कर वह और अधिक असमंजस में पड़ गया। राजकन्या का परिचय हुए बिना, देखे बिना वह उसके दुःख का कारण किस प्रकार हो गया यह उसे कुछ भी समझ में नहीं आया।

भास्कर अस्ताचल की ओर जा रहा था। महेन्द्र ने उधर दृष्टि डाली। उन्हें जाने की जल्दी है यह पहिचान कर–देखकर मृगावती शीघ्र ही बोली, "आप आचार्य श्री की प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिए।"..........

"हाँ प्रयत्न करने वाला हूँ।" महेन्द्र ने उसका वाक्य पूरा करते हुए कहा, "क्या यह अघोर हिंसा ऐसे ही चलेगी, ? ऐसा आपको रुचता है क्या ? आपको पसन्द है क्या, यह भयंकर हिंसाकाण्ड ?

"इस हिंसा को आप न रोकें ऐसा मेरा अभिप्राय नहीं। परन्तु आप इस हिंसा की रोक थाम के लिए नरयज्ञ प्रारम्भ कर दूसरे प्रकार की हिंसा नहीं करने वाले हैं ?" मृगावती गम्भीर मुद्रा कर बोली।

"मायने"? महेन्द्र आश्चर्य प्रकट करता हुआ बोला। "आप इस हिंसा काण्ड को रोकने के लिए मेरे पिता के साथ युद्ध करने वाले हैं न ?" मेरे वृद्ध पिता पर इस प्रकार का संकट न आये यही मेरी आकांक्षा है। आपके समान ही मैं देख रही हूँ यह पापकर्म थांबना अनिवार्य है, परन्तु आप मेरे पिता के साथ युद्ध नहीं करेंगे ऐसा मुझे वचन देना चाहिए। " उसका कण्ठ रुद्ध हो गया। गद् गद् स्वर में वह पुनः बोली" मिलेगा न आप से यह वचन ?

राजकन्या कहाँ गलती कर रही है, उसकी गैर समझ क्यों है, अब महेन्द्र को ध्यान में आया। मैंने महाराज श्री के पास जो बातें की वे आधी ही इसने सुनी हैं इसीलिए, युद्ध करना मेरा निश्चय है, यह समझ बैठी है। इसी कारण इस प्रकार यह बोल रही है। यह महेन्द्र की समझ में आ गया। अतः इस अवसर से लाभ उठाना चाहिये ऐसा विचार कर वह बोला—

"ठीक है, यदि आप इस कर्म को रोकने का प्रयत्न करोगी तो युद्ध कभी नहीं होगा यह निश्चय समझें।"

महेन्द्र ने जिस समय युद्ध नहीं करने का वचन दिया उस समय मृगा-

वती को कितना आनन्द हुआ होगा, यह सोच कर कि मेरा पिता का एक बड़ा भारी संकट टल गया। उसके हर्ष का वर्णन करने में शक्य नहीं। वह कृतज्ञता प्रकट करती हुयी महेन्द्र को ओर देखती–खड़ी रही।

"समय अधिक हो गया" यह देखकर महेन्द्र बोला, "ठीक है इस समय टाइम अधिक हो गया है, मैं जाकर आता हूँ, तो भी इस आनन्द रूप प्रसंग की स्मृति में मैं अपनी मुद्रिका आपको देता हूँ।" इस प्रकार कहते हुए उसने हाथ की उंगली से हीरे की मुद्रिका निकाल कर उसे देदी। हास्यमुखी मृगावती ने आनन्द से मुद्रिका स्वीकार कर उस पर अंकित नाम पर दृष्टि डाली, "महेन्द्र" ऐसा अस्पष्ट धीमे स्वर में उच्चारण करते हुए उसके अधरों के हलन-चलन से उसका भाव समझ कर हँसते हुए पूछा, "परन्तु आपने अपना नाम नहीं बताया ?"

मृगावती ने अपने नाम की मुद्रिका आगे बढ़ाते हुए कहा "क्या इसे स्वीकार करियेगा ?" इस समय भी उसका स्वर मन्द और अस्पष्ट था महेन्द्र ने नेत्र स्फालन करते हुए उधर देखा और हाथ बढ़ाया उतने ही में देखते-देखते रविराज अस्ताचल की ओट में जा छिपे। इस समय तक चुप-चाप खड़ी मृगावती की सहेली चट-पट बोल उठी। "गोधूली बेला का यही समय है न ?" उसके बोलते ही दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा और मुस्कराये। इशारों में ही एक दूसरे का समाचार प्राप्त कर महेन्द्र अपने रथ पर सवार हो गया। महेन्द्र ने पुनः एक बार पीछे मुड़कर देखा। मृगावती अभी तक उसके रथ की ओर दृष्टि गड़ाये खड़ी थी। जब तक रथ ओझल नहीं हुआ वह देखती रही।

रथ बहुत दूर चला गया। अब मृगावती अपनी सखी के साथ राज-महल की ओर वापिस लौटी। उसके आनन्द का पारावार नहीं था। सखी का विनोदपूर्ण वाक्य ने तो और अधिक उसे गुदगुदा दिया था। उस आनन्द के साथ ही अपने पिता का भयंकर संकट दूर करने का उसे गौरव अभिमान भी हो रहा था।

उस दिन प्रतिदिन की अपेक्षा घर जाने में विलम्ब हो गया था। मैंने एक बड़ा विपत्ति का पहाड़ चूर किया है।" यह बात पिताजी को कैसे कहना, इसी का वह विचार कर रही थी। परन्तु क्या उसके कार्य से पद्म-नाभ को आनन्द होगा ?

मनुष्य एक दृष्टि से कुछ विचारता है, उसकी अपेक्षा कुछ एक रहती है, परन्तु अन्त में फल कुछ और ही घटित होता है। ऐसा संसार का नियम है। अनुभव में आता है। मृगावती उस दिन मुनिदर्शनों को गई। यह देखते ही, वह समाचार माणिकदेव को कहने के लिए एक उसका गुप्तचर दौड़ता हुआ मठ में पहुँचा, परन्तु उस समय माणिकदेव वहाँ नहीं था। वह तो राजमहल में राजा के पास आया था। अतः मठ में पूछ कर शीघ्रातिशीघ्र उलटे पाँव राजमहल में आ धमका। माणिकदेव को इशारा कर बाहर बुलाया और सब समाचार उसे सुना दिया।

मृगावती मुनिदर्शन को गई यह सुनते ही उसका कोपानल तलुओं से एकदम शिर पर लहक उठी। क्रोध से संतप्त हुआ वह पुनः राजा के पास गया। अच्छी तरह अब उसके कान खोले। उसके मुख से वचन सुनते ही पद्मनाभ घबरा गये। "मेरी पुत्री ने इतना बड़ा अपराध कर डाला", ऐसा प्रतीत होने लगा, और यह पुरोहित भी आग-बबूला होकर कोई बड़ा भारी शाप देगा, संभवतः यहीं अभी भस्म कर देगा इस प्रकार विचारता हुआ राजा अनेक प्रकार से पुरोहितजी की मनवार-खुशामद करने लगे, नाना प्रकार बिनती कर उसे शान्त करने का प्रयत्न करने लगे।

"अब यह राजकुमारी ही देवी के कोप की बलि चढ़ने वाली है। और तुमने भी आज तक इसके विषय में कोई प्रबन्ध नहीं किया इसलिए तुम पर भी शीघ्र ही भयंकर संकट आकर तुम्हारा अवश्य ही सत्यानाश किये बिना छोड़ने वाला नहीं।" इस प्रकार पुरोहित के मुख से अपने और कन्या एवं वंश के अपाय रूप वाक्यों को सुनकर पद्मनाभ महाराज उसकी चापलूसी खुशामद करते हुए उससे कहने लगे, "माणिकदेव एक बार मुझे क्षमा करदो। यह सब भूल मेरी ही है। इससे आगे मैं मृगावती को बाहर कहीं भी नहीं जाने दूंगा। तथा कल से मुनि का उपदेश सुनने को कोई भी नहीं जाने ऐसा भी प्रतिबन्ध लगाता हूं। सबको रोक दूंगा। परन्तु इससे देवी का कोप शान्त होगा न ?"

राजा के वचन सुनते ही पुरोहित का पारा कुछ ठण्डा पड़ा, कुछ अच्छा सा लगा। मृगावती का ही नहीं, अपितु समस्त लोगों का ही मुनि उपदेश में जाना बन्द होगा यह सुनते ही उसे परम हर्ष हुआ।

अंधेरा होने लगा। माणिकदेव जाने के लिए उठने ही वाला था, कि

उसी समय आनन्दविभोर मृगावती अपने पिता को यह आनन्द सूचना देने को दौड़ती हुई अन्दर आई। परन्तु वहाँ पुरोहित को देखते ही उसका चेहरा फक्क रह गया। जैसे काठ मार गया हो उसे।

अपनी आज्ञा भंग कर मुनि के पास जाकर नग्न मुनि का दर्शन करके आने वाली मृगावती को अपने सामने आई देखकर राजा पद्मनाभ की आँखें रक्त समान लाल-लाल हो गईं। वे कठोर स्वर में डाटते हुए बोले, "जा जा वहीं पहाड़ पर ही जाकर बैठ, उस नग्न साधु के दर्शन को नहीं जाना कहने पर भी, तू वहाँ गई ?, मैंने ठोक कर निषेध किया वही काम तू ने किया, यह देवी का कितना बड़ा अपराध किया है ? जा, इसके प्रायश्चित में ही तेरा बाहर जाना बन्द ही कर दिया है।" बाहर कहीं नहीं आ सकती तू ?

अचानक बिजली पड़े वृक्ष की जैसी दुर्दशा होती है, उसी प्रकार मृगावती की दशा हुई। एक क्षण में उसका अपार हर्ष विषाद में परिणत हो गया। उसके आनन्द पर अप्रत्यासित वज्रपात हुआ। उसका चेहरा एकदम सफेद हो गया। विजयी पुरोहित ने उसकी ओर रूक्ष दृष्टि से देखा। बेचारी मृगावती एक शब्द भी नहीं बोली, चुप-चाप निकल कर चली गई और अपनी माँ के पास जाकर गाल मुँह फुलाये फफक-फफक कर रोने लगी।

पशु-नर बलि-दुःखों का आमंत्रण
यदि करोगे प्राणी घात
आपकी होगी शांति समाप्त

उत्सव की तैयारी-८

आश्विन सुदी प्रतिपदा से कालीमाता की यात्रा का प्रारम्भ होने वाला है। यह यात्रा बहुत विशाल रूप में भरती थी। आस-पास के अनेक लोग देवी को मनाने-प्रसन्न करने को, मनौती मनाने को, पहले की मानता को पूरी करने आदि इस प्रकार के अपने-अपने अभिप्राय से आते हैं। यात्रा का समय बहुत नजदीक आने के कारण पुरोहित हर वर्ष की भाँति पूरे उत्साह से तैयारी में लगा हुआ था। देवी का मन्दिर रंग-रोगन से सजाया था। सामने बड़ा मण्डप डाल कर सुन्दर ढंग से बनाया गया था। नगारखाने पर विशाल लम्बी-चौड़ी पताका लगाई थी, सर्वत्र सजाने का काम चल रहा था। महाद्वार के दोनों ओर हलवाईयों, खौंमचे वाले, वस्त्रादि की दूकानें लग रही थीं, खासा बाजार हो गया। चारों ओर धूम-धाम मची थी। परन्तु हर साल के समान माणिकदेव को न उत्साह था न चेहरे पर खुशी ही थी। मल्लिपुर में श्री अमरकीर्तिजी आचार्य महाराज का चातुर्मास चल रहा है इससे मेरे षड्यन्त्र का भण्डाफोड कब हो जायेगा ? यह भय उसे हर क्षण लगा हुआ था। मेरा जाल तो उधडेगा—पर देवी का महात्म्य पूर्ववत टिकेगा कि नहीं ? यह सत्ता निर्मूल होगी क्या ? इसी विवेचना से हर क्षण उसका मन चंचल-तरंग की भाँति डाँवाडोल हो रहा था।

आश्विन मास का वदी पक्ष था। रात्रि आकाश के बादलों से घिरी थी। धीमी-धीमी वर्षा हो रही थी। घनघोर बादल घिरे थे। देवी के मन्दिर के बाहर चारों ओर स्तब्धता छायी हुई थी। उस स्तब्धता का भेदन करता हुआ एक वृक्ष के नीचे बैठा नरसिंह गहरे विचार में मग्न था। यह माणिकदेव का पट्ट-शिष्य था। रात्रि पहर पर पहर व्यतीत हो रही थी। मध्य रात्रि का समय आया ? माणिकदेव बाहर निकला। नरसिंह अभी तक क्यों नहीं आया ? इसी चिन्ता में वह स्तब्ध खडा हो उसकी बाट जोहने लगा। इसी समय किसी वृक्ष के नीचे एक मनुष्य आकृति उसे दिखाई दी। धीरे-धीरे माणिकदेव उस आकृति की ओर बढने लगा। अत्यन्त निकट पहुँचने पर, यह हमारा नरसिंह ही है, यह उसने अच्छी तरह पहिचान लिया।

वह आवाज नहीं करता धीरे से उसके पीठ पीछे जा खड़ा हुआ। नरसिंह इतना गम्भीर विचार मग्न था कि उसे कुछ भी भान नहीं हुआ। इतना चिन्ता में डूबा उसे कभी किसी ने नहीं देखा था। उसकी एकान्तता और एकाग्रता देखकर माणिकदेव भी आश्चर्यचकित रह गया। थोड़ी देर उसकी इस स्थिरता को देख माणिकदेव ने उसकी पीठ पर थपकी मारी और बोला–

"नरसिंह ! ऐसा कौन-सा विचार चल रहा है ? जिस काम के लिए गये थे वह काम हुआ कि नहीं ?"

नरसिंह सहसा उठ खड़ा हुआ। वह कुछ बोला नहीं। नीची गर्दन किये चुप-चाप ही खड़ा रहा। उसका यह विचित्र सहसा परिणमन देख माणिकदेव को बहुत ही विचित्र लगा। क्योंकि नरसिंह उसका बिल्कुल दाहिना हाथ था। माणिकदेव के मुख से शब्द बाहर आते ही कैसा भी कठिन काम क्यों न हो तत्क्षण पूर्ण करता था। प्राणों की भी उसे परवाह नहीं होती थी। कैसा ही संकटापन्न कार्य क्यों न हो वह सफल होता रहा। था गुरुजी की आज्ञा विरुद्ध उसने कभी भी आज तक कैसा ही विचार नहीं किया था। यह प्रथम बार है कि आज उसके हृदय में उथल-पुथल के बादल घुमड रहे थे। क्या करना क्या नहीं करना ?

माणिकदेव ने आज उसे आज्ञा दी थी कि जिन आठ वीरों ने हिंसा बलि बन्द करने की प्रतिज्ञा करके यात्रोत्सव रोकने का भार लिया है, उनके घरों में जाकर आग लगादो, लुटवा दो, और देवी प्रचण्ड शक्ति है ऐसा उन्हें अनुभव कराओ। उसका मठ काले कारनामों का अड्डा था। वहाँ अनेक गुण्डे लोग उसने एकत्रित किये थे। उनका पालन-पोषण करता था। मठ के अन्दर भुंआरा—तलघर था। उसी में अनेक महत्वपूर्ण कारनामे चलते थे। यह कोई प्रथम अवसर नहीं था। जब तब कोई भी कुछ भी देवी के विपरीत करता तो उसके घर द्वार जलाना, लूटना, मार पीट कराना और देवी का चमत्कार बताना यही उसका धन्धा था। बीच-बीच में घटनाएँ होती रहती थीं। इसी से लोगों में भय और आतंक छाया हुआ था। सब देवी के नाम पर झूठे चमत्कार से अभिभूत हो गये थे। इन सब कुकृत्यों का कार्य नरसिंह ही करता था। परन्तु आज ही उसने इस अनाचार-अत्याचार रूप कार्य से विमुखता दिखलाई थी। आज ही उसने यह काम नहीं किया। माणिकदेव की आज्ञा मिलते ही वह मठ के बाहर निकला परन्तु आज उसने अपने

साथियों को साथ में नहीं लिया था। दशलक्षण पर्व के समय में वह गुप्तरूप से कई बार आचार्य श्री के दर्शनों को गया था। उनका उपदेश भी सुना था। अहिंसा का माहात्म्य सुन कर उसका हृदय पिघल गया था। पिछला अन्तिम दिवस का मार्मिक भाषण सुनकर तो उसका पाषाण हृदय पिघल कर पानी हो गया था। पशु बलि तो वह रोज ही देखता था। परन्तु नर हत्या करने में भी उसे हिचकिचाहट नहीं थी। ऐसे निर्दयी नरसिंह के हृदय में भी आज आचार्य श्री के अहिंसा तत्त्व विवेचन रूप उपदेश से दया का झरना फूट पड़ा था। इसी से आज माणिकदेव की आज्ञा पालन नहीं कर सका।

देवी का यथार्थ सच्चा कोई माहात्म्य है क्या ? यह शंका उसके मन में बार-बार आ रही थी। देवी बोलती नहीं थी। देवी की ओर से कोई भी किसी प्रकार सन्देश भी नहीं आता था। न वह किसी को शाप न वरदान ही देती थी। यह बात उसे पक्की मालूम थी। फिर भी बिना कारण देवी के नाम पर, केवल पुरोहित की इच्छापूर्ति के लिए इतना दुष्कृत्य करने का मुझे क्या प्रयोजन ? मैं क्यों तैयार हुआ इस कुकर्म को ? यह मेरी भयङ्कर भूल है, यह उसे प्रतीत होने लगा। इसी कारण आज पुरोहित की इच्छा उससे पूर्ण न हो सकी।

नरसिंह मौन था। कुछ भी बोला नहीं, उसे शान्त, चुप देख माणिकदेव ने उसकी पीठ पर हाथ फेर कर कहा, "वत्स मौन क्यों हो ? बोलते क्यों नही ? आज तुम मल्लिपुर नहीं गये ?"

"नहीं" नरसिंह स्पष्ट शब्दों में बोला।

"क्यों क्या देवी की आज्ञा पालन नहीं करना ?"

"देवी की ? क्या वस्तुत: देवी ऐसी आज्ञा देती है ?" नरसिंह ने तेज आवाज में पूछा।

मेरे सामने मेरा ही पट्टशिष्य-मुख्यशिष्य इस प्रकार का उद्दण्डता का उत्तर दे रहा है यह देखकर माणिकदेव का चेहरा गम्भीर हो गया। एक क्षण में उसका शरीर निर्जीव जैसा हो गया। क्योंकि उसके एक-एक कारस्थान नरसिंह को पूर्णत: स्पष्ट विदित थे। उसकी पूरी पोलपट्टी वह जानता था। उसे दु:खी कर एक दिन भी मैं जी नहीं सकता। यह वह भले प्रकार जानता था। अत: यह सब सोचकर वह अत्यन्त मधुर स्वर में, प्रेम से बोला,

उसकी पीठ पर हाथ फेरता जाता था, "बच्चे, देवी की आज्ञा नहीं थी, पर मेरी तो आज्ञा थी न ? मेरी आज्ञा तुम पालन नहीं करोगे क्या ? नरसिंह ! मै जो यह कहता हूँ उसमें कोई मेरा स्वार्थ है क्या ? देवी के भक्तों के लिए ही यह सब करना पडता है । यह क्या तुम नहीं जानते ? आज या कल मेरा काम तुम्हें ही करना है । इस मठ का अधिपति कोई दूसरा बनेगा, ऐसी तुम्हें शङ्का है क्या ?, तुम्हारे मन में कैसी भी शङ्का है तो, उसे दूर कर ! तुझे आज तक पाल पोष कर बढाया, अपना सर्व गुप्त रहस्य तुझे बतलाया, अपना निकटवर्ती बनाया, तो भी क्या तुम्हें सन्देह है ? मुझ पर विश्वास नहीं ? जाओ मुझ पर तुम्हारा तनिक भी प्रेम है विश्वास है तो अभी की अभी मेरी इच्छा पूरी करनी चाहिए ।

कपटी माणिकदेव की वाक्पटुता द्वारा नरसिंह का निश्चय डगमगाने लगा । पन्द्रह वर्ष से उसकी आज्ञानुसार जो कारनामे किये हैं, वे सब असत्य और अमानुषिक हैं, तो भी उसके सान्निध्य में रहा हूँ, उसने गलत मार्ग पकडा है तो भी मुझे गुरु आज्ञा पालन करना चाहिए ऐसा लगने लगा उसे । उसके हृदय में सन्देह रूपी धुंआ उडने लगी, घुमार कम हुआ और गुरु आज्ञा भंग नहीं करना, इच्छानुसार काम कर देना ऐसा निश्चय कर वह बोला—

"गुरुदेव ! आपके वचनों पर अविश्वास दिखाया, इसके लिये आप क्षमा करें । आपकी आज्ञा पालन करना यह मैं मेरा कर्त्तव्य समझता हूँ । चलो, इसी समय मैं उधर जाता हूँ ।" इस प्रकार बोल कर वह मठ की ओर चल पड़ा । वहाँ से दस-पांच साथियों को लेकर मल्लिपुर की राह पकडी ।

× × × ×

दूसरा दिन आया। प्रातःकाल से मल्लिपुर के घर-घर में एक ही चर्चा चल रही थी। जिन-जिन ने देवी की बलि बन्द करने की प्रतिज्ञा की थी उन उन के घरों में रात्रि को आग लग गई ! कुछ लुट गये। कुछ भस्म हो गये। किसी का पूरा-पूरा नुकसान हो गया। यह देवी का ही प्रकोप है। ऐसा भोले-अज्ञानी लोगों को लगने लगा। इस प्रकार की घटनायें पहले कितनी ही बार हो चुकी थीं। पद्मनाभ राजा ने इस विषय में अपने पहरेदारों से बहुत कुछ चौकसी कराई थी, परन्तु अपराधियों का पता नहीं लगा, कोई गिरफ्तार भी नहीं हो सका। इसका कारण था कि मायाचारी धूर्त शिरोमणि माणकदेव ने कोतवाल सरीखे अनेक राज्य कर्मचारियों को वश में कर रक्खा था। इसी से अपराध कभी भी प्रकट नहीं हो पाते थे। 'रक्षक ही भक्षक हों तो जीवन कहाँ सुरक्षित, यह दशा थी वहाँ की। फलतः लोगों का" यह विश्वास जम गया, कि सभी उपद्रवों का मूलस्रोत कालीमाता का प्रकोप ही है।

जो हो, सब कुछ नुकसान होने पर भी प्रतिज्ञाबद्ध आठों वीरों का निश्चय तनिक भी विचलित नहीं हुआ। वे सुमेरु पर्वत की भाँति अपने निश्चय पर अटल थे। प्राण गये तो भी हम इस काम से नहीं हटेंगे, पीछे कदम नहीं धरेंगे, ऐसा उन्होंने दृढ़ संकल्प बनाये रक्खा। वे आचार्य श्री के पास आ बैठे थे। पद्मनाभ ने लोगों पर रोक लगादी, "कोई मुनि का उपदेश सुनने नहीं जाये" राजाज्ञा उलंघन अपराध है, सोचकर बहुत से लोगों ने आचार्य श्री के उपदेश में जाना बन्द कर दिया।

उधर, लोकमत को अनुकूल बनाकर 'देवी की यात्रा' महोत्सव को सफल बनाने के प्रयत्न में माणिकदेव जी-जान से प्रयत्न कर रहा था। भाद्रपद मास समाप्त हुआ। आचार्य श्री का उपदेश पर्याप्त लोगों का हृदय परिवर्तन कर चुका था। शनैः शनैः कृष्णपक्ष पूरा हुआ। कल अश्विन सुदी एकम आने वाली है। इसी दिन से कालीदेवी का उत्सव भी प्रारम्भ होने वाला है। लोगों के हृदय धड़क रहे थे। मल्लिपुर के हजारों लोग चिन्तातुर थे कि "आचार्य श्री की प्रतिज्ञा किस प्रकार पूर्ण होगी ?" फिर, "देवी के प्रकोप से मल्लिपुर पर क्या संकट आयेगा" ? इसकी भी कुछ लोगों को घबराहट हो रही थी।

पद्मनाभ राजा की ओर से भी हरसाल की भाँति इस वर्ष भी तैयारी चालू थी। माणिकदेव की आज्ञा प्रमाण ही वह सब यथायोग्य कार्य करता

था । उसने यह भी जानकारी प्राप्त कर ली थी कि "जिस दिन से अर्थात् अश्विनसुदी प्रतिपदा से देवी की पूजा प्रारम्भ होती है उसी दिन से देवी की बलि बन्द होने पर्यन्त आचार्य श्री के उपवास चालू होने वाले हैं," कितने ही लोग "उनकी इच्छा प्रमाण प्रयत्न भी करने वाले हैं।" इससे उसी समय से उसे यह चिन्ता थी कि इस साल का यह अवसर कैसे पार पड़ेगा ? पर उपाय क्या था ? वीतराग साधू की आत्मशक्ति से सब ठण्डे पड़े थे । स्वयं माणिकदेव का उत्साह भी हर वर्ष जैसा नहीं था । या यों कहो वह अर्द्धमृतक सा हो रहा था ।

यात्रा की तैयारी चालू थी । परन्तु बेचारी मृगावती एक अपराधी की भाँति राजमहल की चार दिवारी में बन्द हो रही थी । बन्दी को चैन कहाँ ? सुख शान्ति कहाँ ? यही हाल था उस बेचारी का । उसे अपनी प्रतिज्ञा निभाने की छटपटी लगी थी । उसे बाहर जाने की मनाही होते ही वह सहसा किसी से बात भी नहीं करती थी । रात-दिन विचारमग्न रहती । "देवी की बलि प्रथा को मैं बन्द करने का प्रयत्न करूँगी" ऐसा उसने महेन्द्र को वचन दिया था । परन्तु बाहर भी जो निकल नहीं सकती, ऐसे सख्त बन्दीखाने में पड़कर सिवाय रोने के वह क्या करती ? उससे अन्य क्या हो सकता था !

हिंसा से आत्मा का पतन
होता है, इससे बचना चाहिए ।

भयङ्कर आज्ञा—९

समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। अश्विन सुदी प्रतिपदा का दिन उदित हुआ। मल्लिपुर के प्रवेश द्वार से देवी के मन्दिर पर्यन्त सुश्रृङ्गारित सजाया मार्ग लोगों की भीड से भर गया प्रतीत हो रहा था। दूर-दूर के हजारों लोग यात्रा के लिए आ-आकर जमा हो रहे थे। मन्दिर के सामने वाले विशाल भू प्रांगण में सैंकड़ो बैलगाड़ियाँ खड़ी थीं। प्रत्येक गाड़ी के पास एक-दो बकरा का बच्चा बंधा दिख रहा था। जिनकी मनौतियाँ पूरी हो गई थीं। वह भक्त कोई दोनों, कोई दस बकरे बांध कर आनन्द से बैठे हुए थे। इस प्रकार बकरों का खासा बाजार दिखने लगा। प्रत्येक गाड़ी के पास, वृक्षों की छाया में, पत्थर के चूल्हे बना-बना कर लोक भोजन करने-बनाने में जुटे हुए थे। कारण कि यह उत्सव का प्रथम दिवस था। दस बजे देवी को नैवेद्य देने के लिए सबको इकट्ठा होना था। इन नवरात्रि के नौ दिनों में प्रतिदिन नवीन-नवीन, तरह-तरह के पक्वान्न चढ़ाये जाते थे। अन्तिम दशवें दिन में पशुबलि चढाकर यात्रा पूरी होती थी। यह क्रम था देवी पूजा का।

यात्रा प्रारम्भ होते ही प्रातः ठीक ६ बजे देवी की पूजा कर आरती होती और बहुत से यात्री यात्रा कर मण्डप में दर्शनों के लिए समन्वित हो जाते। उत्सव का यह प्रथम ही दिवस था। पूजा की घण्टी बजी। झांझ बज उठी। सहनाई का मधुर स्वर सब दर्शकों का मन आकर्षित करने लगा। धीरे-धीरे यात्रीगण दर्शन कर मण्डप में बैठने लगे। थोड़े ही समय में मन्दिर पूरा खचाखच भर गया। देवी को सुन्दर वस्त्र और अमूल्य सुन्दर आभूषणों से भले प्रकार सजा कर तैयार किया गया था। एक घण्टे लगातार पूजा हुई। उसके बाद आरती शुरू हुई। लोग एक दूसरे को हटाते, आरती गुनगुनाते भक्तिपूर्वक देवी की ओर आनन्द से देख रहे थे।

आरती भी पूरी हुयी। वाद्यों की झंकार बन्द हुयी। सभी ने देवी माँ को नमस्कार किया। ठीक उसी समय महाद्वार से एक तेजस्वी तरुण-

अन्दर आया और उसने उच्च स्वर में "अहिंसा परमोधर्मः" अहिंसा धर्म की जय गर्जना की। एक साथ सबकी दृष्टि उधर घूम गई। चारों ओर स्तब्धता छा गई। वह तरुण पुरुष चारों ओर देखने लगा। पुनः शान्ति से बोल ने लगा—

बन्धुओ, आप सभी देवी की यात्रा करने के लिए यहां एकत्रित हुए हैं। देवी. आपका कल्याण करने वाली माँ है, यह आप जानते हैं। उसकी कृपा से हमें सुख प्राप्त हो, यह आप सबकी आकांक्षा है। परन्तु इस सुख के मिलने के लिए आपको देवी के लिए पशुबलि देनी चाहिए यह आपकी भूल है, यह पूर्णतः गलत है। यह धारणा ही निर्मूल है। देवी यह कभी कहने वाली नहीं कि मुझे खुश करने को पशुबलि चढ़ाओ। क्योंकि हमारे सामने जिस प्रकार सुख पाने की आकांक्षा रहती है उसी प्रकार पशु: पक्षी सभी प्राणी सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहते हैं। उन मूक प्राणियों को भी सुख-दुःख की अनुभूति होती है। उन्हें भी सुख पाने की भावना रहती है। उनके प्राण जाते समय उनको जो दुःख होता है, उनमें जो वेदना, छटपटाहट होती है, उसे देखकर यदि देवी का दया झरना नहीं फूटा तो वह देवी कैसी? अपने सामने तडफडाते अन्याय से घात किये जाने वाले, मूक निरपराध को यदि जीवनदान नहीं दे सकी तो वह तुम्हारा क्या कल्याण करेगी? तुम ही जरा विचार करो। देवी को सभी प्राणी समान रूप से प्रिय-स्नेह दृष्टि से देखने चाहिए। इसलिए आप पशुबलि देकर देवी की विडम्बना मत करो। यदि वास्तव में तुम्हारी देवी को यदि पशुबलि चाहिये तो मैं यहाँ इनके बदले अपने प्राण अर्पण करने को तैयार हूँ। परन्तु भाइयो! अज्ञानवश, बिना विचारे इन बेचारे, निरपराध मूक पशुओं का वध मत करो। उस स्वार्थ साधक पुरोहित के विपरीत निर्देश से यथार्थता को भूल...............।"

उस तरुण का वाक्य पूरा भी नहीं हुआ कि वह माणिकदेव एक खूंखार बाघ की तरह बाहर दौडता आया और उसने क्रोध से गर्जते हुए कहा—"भक्त हो! क्या पागल सरीखे देख रहे हो? यह पाखण्डी बोलता जा रहा है, इसकी बात पर सर्वथा विश्वास नहीं करना। जिसे अपने पेट की रोटी पानी की व्यवस्था भी करने को नहीं होती ऐसा यह तुम्हें उपदेश देता है। परन्तु उससे तुम्हें क्या मिलने वाला है? इसका तुम्हीं विचार करो। यदि देवी का कोप हुआ तो समझ लो सबका ही सर्वनाश होगा।

यदि वह प्रसन्न हो गई तो बस, फिर क्या है, मिट्टी से सोना होगा और तुम सुखी हो जाओगे। क्षणभर में आपकी मनोकामना पूर्ण होगी। तुम्हें यदि देवी की कृपा चाहिए तो ....पकड़ो..........अरो इसे ....पकड़लो, इस हरामखोर पाखण्डी को।"

इस प्रकार पुरोहित के आवेशपूर्ण वाक्य को सुनते ही कुछ मूर्ख अज्ञानी भक्तों ने देखते ही देखते उस तरुण पर हमला किया। चारों ओर से घेर कर उसे पकड़ लिया और जय-जयकार किया "जय काली माता की, 'जय' 'जय' महादेवी की।"

सभी मन्दिर से निकल गये। लोगों को अधिक स्फुरण-उत्साह चढ़ गया। देवी की शक्ति कितनी अपार है, इसकी मानों उन्हें एक जानकारी मिल गई। उन्मत्त माणिकदेव का चेहरा इस विजय से फूलकर कुप्पा हो गया। शीघ्र ही उस तरुण को पद्मनाभ राजा के पास भेज दिया। और उसे जेल में बन्द करने की आज्ञा दी। वह राजपुरोहित था न!"

यह तरुण अचानक कहाँ से आया, पाठकों को विदित ही होगा। आचार्य अमरकीर्ति महाराज के पास जिन आठों वीरों ने अहिंसातत्व प्रसार की प्रतिज्ञा की थी उन्हीं में से यह एक व्यक्ति था। आश्विनशुद्ध एकम का दिन निकलने के साथ ही आचार्य श्री ने युवकों को बुला कर कहा, "हे वीरो! आपने जो प्रतिज्ञा की है उसको पूरी करने का समय आगया है। आज देवी के उत्सव का पहला दिन है। देवी के मन्दिर में आज हजारों लोग जमा होंगे, वहाँ जाकर "बलि देना कितना निंद्य कर्म है पाप है यह बता कर उन्हें अहिंसा का उपदेश देना चाहिए। यह आपका कर्तव्य है। देवी को बलि बन्द हुए बिना मैं आहार ग्रहण करने वाला नहीं। यह मेरी अचल प्रतिज्ञा है। तुम में से प्रतिदिन एक-एक मन्दिर में जाओ और योग्य समय देखकर लोगों की मनोभावना बदलने का शान्तता से प्रयत्न करो। एकनिष्ठ-अंधभक्तों द्वारा कदाचित तुम्हें कष्ट आये, सहन कर तुम्हें अपना काम करना ही चाहिए। प्राण जाने का समय आने पर भी अपना ध्येय नहीं छोड़ना। कर्तव्य की कसौटी पर आप खरे उतरे तो आपका आत्मीक बल प्रकट होगा और निश्चय ही आपको विजय हुए बिना नहीं रहेगी।"

इस प्रकार आचार्य श्री ने अपने शिष्यों को उपदेश देकर स्वयं मौन-व्रत धारण निश्चिन्त हुए। आचार्य श्री का आज प्रथम उपवास भी प्रारम्भ

हुआ। उनके उपदेश के बाद ही एक तेजस्वी तरुण निकलकर देवी के मंदिर की ओर निकल कर गया। इसके उपदेश सुनकर, "यह देवी की यात्रा भंग कर अशान्ति फैलाने वाला पाखण्डी है ऐसा मानकर पुरोहित की आज्ञानुसार पद्मराज महाराज ने उसे राजमहल में ही नजरबन्द कर रख दिया।

द्वितीय दिवस आया। यात्रियों की संख्या बहुत बढ़ गई। प्रतिदिन के अनुसार सवेरे देवी की पूजा प्रारम्भ हुयी। देवी को इस दिन निराली ही पोषाक से सजाया था। मन्दिर मनुष्यों से खचाखच भर गया था। लोगों को यह भक्ति देख माणिकदेव आनन्द से भर गया था। बड़े-बड़े स्तोत्रों से तेज आवाज से पूजा प्रारम्भ की, उतने ही ठाट-बाट से उसने आरती की। आरती पूर्ण होते ही वाद्यध्वनि बन्द हो गई। वैसे ही दूसरा तेजस्वी तरुण आया और उसने "अहिंसा परमोधर्मः" जय घोष के साथ अपना उपदेश प्रारम्भ किया। यह देखकर माणिक देव की आंखें लाल अंगार हो गईं। बिजली के समान घड़घड़ाता माणिकदेव बाहर आ धमका। उसका इशारा होते ही अनेक लोग उस युवक के ऊपर धावाकर आये और उसे पकड़ कर पुरोहित के सामने लाये। निश्चय के अनुसार उसे भी पहले के समान राजमहल में भेज दिया और जेल में रखवा दिया। देवी के भक्तों ने पुनः कालीमाता का जय-जयकार किया। उसकी प्रतिध्वनि गूंजते ही पुरोहित हंसता हुआ चेहरा ले अन्दर चला गया, एवं सभी लोग इस घटित घटना के विषय में चर्चा करते हुए बाहर जाने लगे।

देवी का यात्रोत्सव निर्विघ्न समाप्त हो इसके लिए पद्मनाभ राजा हर प्रकार प्रयत्न शील थे। देवी के मन्दिर में किसी प्रकार भी कोई धांधल न मचे इसके लिए बहुत से सिपाही तैनात कर दिये थे। तथा वे स्वयं भी हर रोज सायंकाल आरती में आते। मृगावती मात्र राजमहल से बाहर कहीं भी नहीं गई थी। हरवर्ष वह अपने पिता के साथ देवी के दर्शनों को आती थी और उसी प्रकार उसके पिता की भी इच्छा उसे अपने साथ लाने की होती। "बलि बन्द होने के पूर्व मैं देवी का दर्शन करने वाली नहीं" ऐसी उसने प्रतिज्ञा की थी। ऐसा उसने अपने पिता को भी स्पष्ट कह दिया था। इसीसे वह और अधिक उस पर रुष्ट हो गया था।

मृगावती अपना कक्ष छोड़कर प्रायः बाहर ही नहीं निकलती थी। राज्य के राजमहल में रोज-रोज एक नवीन कैदी आ रहा है, यह कहाँ से

आता है उसकी उसे जानकारी थी। परन्तु उस बेचारी से क्या होने वाला था? वह स्वयं ही एक कैदी की भांति बन्धन में पड़ी चिन्ता में झुलस रही थी।

प्रतिदिन के समान तीसरा दिवस आया और पुनः एक तरुण पकड़ कर राजा की जेल में आ बंधा। यह सब देखकर मृगावती और अधिक उद्विग्न हो गई। बलि बन्द हुए बिना आहार नहीं ग्रहण करने की आचार्य श्री ने प्रतिज्ञा की है यह भी उसके कान में बात आ गई। अब क्या उपाय करना, ? इसका बहुत देर तक गम्भीर विचार कर अपनी सखी के परामर्श से युवराज महेन्द्र को एक पत्र लिखा और एक विश्वासी नौकर के साथ गुप्त रीति से उसे चम्पानगरी पहुंचाने को कहा।

अब तक आचार्य श्री के पाँच तरुण जेल में आ चुके थे। प्रतिदिन एक नवजवान निरपराध जेल में जाता है यह देखकर लोगों को भी एक प्रकार की चिन्ता उत्पन्न हो गई। उस तरुण का उपदेश अयोग्य था क्या? यह प्रश्न उनके मन में उठकर मस्तक से टकराने लगा। उधर हमारा काम किस प्रकार निर्विघ्न समाप्त हो इसकी चिन्ता पुरोहित माणिकदेव को लगी हुयी थी। वह उसी विचार में बैठा था कि उसके गुप्तचर ने एक पत्र की थैली लाकर उसके हाथ में दी।

बलि बन्द करने के लिए कहाँ क्या-क्या उपाय चालू हैं इसकी जानकारी के लिए माणिकदेव के अनेकों गुप्तचर लगे थे। उसके ये शिष्य सर्वत्र घूमते थे। उन्हीं में से एक गुप्तचर ने यह थैली लाकर दी थी।

मृगावती ने जो पत्र महेन्द्र को लिखे थे, उनका जवाब लाते हुए नौकर को रास्ते में पकड़ लिया और उससे पत्र लेकर माणिक देव के शिष्य लेकर आये थे। माणिक देव ने पत्र खोलकर देखे। उसका चेहरा क्रोध से लाल चट्ट हो गया, ओंठ फड़फड़ाने लगे, उसने एक दीर्घ स्वास छोड़ी और वे पत्र नरसिंह के सामने फेंक कर बोला, देख, देख ये पत्र! उस दुष्ट राजकन्या के क्या क्या कारस्थान चल रहे हैं यह देख, ! परन्तु यह प्रसंग मेरे सम्बन्ध में है, मैं कौन हूँ यह वह भूल गई! ठीक है, अब उसका विचार करने का समय नहीं, इस माणिकदेव के विरुद्ध जाने का परिणाम क्या होता है यह उसे प्राण जाने के समय समझ में आयेगा।" इस प्रकार ओठों में ही बुड़बुड़ाते उसने अपने शिष्य नरसिंह की ओर देखा।

महेन्द्र ने मृगावती के पत्रों का जो उत्तर दिया था उसका भाव निम्न प्रकार सारांशरूप में था—

"आचार्य श्री के दो तीन शिष्य जेलखाने में बन्दी बना लिए गये, तुमको भी राजमहल से बाहर जाने की बन्दिस कर दी गई है यह सब पढ कर बहुत ही खराब लगा। बलिबन्द नहीं हुयी तो आचार्य श्री प्राणान्त तक उपवास करने वाले हैं, यह पढकर तो बहुत ही अधिक चिन्ता हुयी। मैं कल अवश्य ही आचार्य श्री के दर्शन करने आऊंगा और जरुर ही मैं उसके विषय में प्रयत्न करने का उपाय हो करूंगा……।"

पत्र के नीचे "युवराज महेन्द्र, चम्पानगर" इस प्रकार लिखा था।

नरसिंह के हाथ से वह पत्र ले पुनः माणिकदेव ने उसे ध्यान पूर्वक पढा और उसके टुकड़े टुकड़े कर घृणा से फाड कर फेंकते हुए बोला—

"बच्चे, यहाँ आ" कोई पास में तो नहीं है यह जानकारी कर उसके कान मे धीरे से माणिकदेव ने कुछ कहा, उस भयंकर आज्ञा को सुनकर, नरसिंह एकदम चौंका, परन्तु माणिक देव की जलते अंगारे के समान नेत्र देख कर घबडाया और लडखडाती आवाज में बोला—

"ठीक है, उसका रक्त लाकर दूंगा" क्या थी वह भयंकर आज्ञा ?

हिंसक मनुष्य अपने पोषक को
भी नहीं छोड़ता।

महेन्द्र का जेल में बन्दी होना—१०

अबतक सात वीर युवक जेल में जा चुके थे। अष्टमी के दिवस की पूजा प्रारम्भ होने जा रही है, परन्तु क्षण-क्षण में माणिकदेव उदास अन्तःकरण से बाहर की ओर देखता जा रहा था कि आज भी कोई पाखण्डी आने वाला है क्या ? इसकी उसके हृदय में पूरी धँसत ही बैठ गई थी। आरती समाप्त हुयी। बाजे बन्द होते होते एक वीर निर्भय युवक की गर्जना सुनाई पड़ी। "अहिंसा परमोधर्मः", जय हो अहिंसा धर्म की। "उसकी मधुर किन्तु बुलन्द आवाज ने सबको आकृष्ट कर लिया। कितनी शान्त मुद्रा थी उसकी ? उसको देखते ही सबके हृदय में एक नैसर्गिक आदर उत्पन्न हो गया। पूजा जिस दिन से आरम्भ हुयी थी, उसी दिन से एक-एक नवजवान निरपराध वीर जेल में बन्दी बनाया जा रहा था। परन्तु उनमें से किसी की भी मुद्रा-चेहरे पर क्रोध का तनिक भी आभास नहीं था। वे सभी शान्त और प्रसन्न चित्त थे। इससे और भी अधिक सबको आश्चर्य हो रहा था।

उस तरुण का बोलना प्रारम्भ होते ही समस्त उपस्थित जनों का लक्ष उधर ही केन्द्रित हो गया था। इतने में ही पञ्चारती लिए वह पाखण्डी माणिकदेव पुरोहित बाहर आया। क्रोध से उबलता हुआ बोला, "हे, लोगों ! मूर्ख सरीखे उस पाखण्डी की बड़-बड़ाते बकवास को क्या समझ कर सुन रहे हो।' धरो पकड़ो उसे, डालो कैदखाने में।"

पुरोहित ने सर्व लोगों पर एकबार अपनी दृष्टि घुमायी। इसकी ईर्ष्यावृत्ति से आज एक भी व्यक्ति दौड़कर नहीं आया। सभी स्तम्भित थे। इससे वह माणिकदेव और अधिक जल-भुन उठा। और जमीन पर पाँव जोर से पटक कर दांत डसता, अधर चबाता बोला", तुम उसको नहीं पकड़ते ? देवी पर तुम्हें विश्वास नहीं ? तुम्हें उसके कोप का भय नहीं लगता ?

सर्वत्र गम्भीरता छा गई। कोई भी कुछ नहीं बोला, सभी लोग उस तरुण की ओर मूर्तिमान से एक टक देख रहे थे। पुरोहित का बोल—मध्य

मे बन्द कर वह बोला, "पुरोहित महाराज, इन भोले, गरीब लोगों को चेतावनी नहीं दो, तुम्हीं बोलो मेरा क्या अपराध है, यदि अपराध है तो तुम्हीं पकडो मुझे यदि मेरा अपराध है तो तुम उचित दण्ड दो। परन्तु उसके पूर्व इन अज्ञ भोले भाई बन्धुओं को चार शब्द बोलने का मुझे अवसर दो।" इस प्रकार कह कर वह लोगों की ओर उन्हें—सम्बोधन कर बोलने लगा।

भाइयो! यदि सचमुच देवी माँ बलि मांगती है तो मैं स्वयं प्राण देने को तैयार हूँ। मेरे अकेले के रक्त से यदि देवी की तृप्ति नहीं हुयी तो तुम मेरी मृत्यु के बाद पशुबलि करना? हमारे इस स्वार्थसाधी पुरोहित के वचनों पर विश्वास मत करो। दुर्बल, असमर्थ प्राणियों का बध कर सुख मिलने की आशा से—लालसा से निर्दयी मत बनो। अपितु उनकी रक्षा में अपने प्राण अर्पण कर वीर बनो। इस बलि को बन्द करने में हमारा कोई स्वार्थ है क्या? इसका विचार करिये। परन्तु जिसको अपना स्वार्थ सिद्ध करना है उसके पीछे लग कर आप कर्त्तव्यभ्रष्ट नहीं होना? सावधान होइये! देवी तनिक भी कुछ मांगती नहीं। भक्तों के पास भीख मांगकर खाना इतना दारिद्रय देवी को नहीं आया है। आप इन मूक पशुओं की बलि चढा कर भूमि को रक्त से मत रंगो। हजारों प्राणियों का घात उसी की सन्तान का नाश है। तुम्हारे हृदय में दया है। आप इतना निर्दय कर्म करने को कभी भी तैयार नहीं होने वाले, ऐसा मुझे विश्वास है। बोलो, यदि मेरी बात आपको सही जचती है तो एक साथ बोलो"अहिंसा परमोधर्मः।"

उस तरुण के उपदेश से कितने ही के हृदय में दयांकुर निकल आये। इतना ही नहीं अधिकांश लोगों के उद्‌गार बाहर गूंज उठे "अहिंसा परमो-धर्मः" "अहिंसा धर्म की जय।"

लोगों के मुख से अहिंसा धर्म का जयनाद सुनते ही उस तरुण का मुखकमल वस्तुत: सरोज सरीखा खिल उठा। परन्तु यह सब माणिकदेव को कैसे सहन होता? क्रोध से अभिभूत, अविवेकी उस माणिकदेव ने अपने हाथ की पञ्चारती (बड़ी पाँच दीपकों की आरती) उसके भाल पर फेंक कर मारी, उसका कपाल फूट गया और उससे रक्त धारा बह चली। यही नहीं वह बेहोश होकर धडाम से पृथ्वी पर गिर पड़ा। लोगों का हृदय दया से उमड पड़ा। वे उसे सावधानी से उठाकर होश में लाने का प्रयत्न करने

लगे। उसी समय राजसैनिक वहां आये। और उसे उसी दशा में उठाकर राजमहल में ले गये। सब लोग उधर एक टक से देखते रहे।

पद्मनाभ महाराज ने जब उस तरुण को रक्त से लथ-पथ देखा तो उसका हृदय भी दहल उठा। उसे यह दृश्य बहुत खराब लगा। पुरोहित के इस राक्षसी कृत्य से उसे क्रोध भी आया। परन्तु क्या करना चाहिए यह उसे कुछ समझ में नहीं आया। उसने उस तरुण को जेल में रखने और राजवैद्य द्वारा उसका उपचार करने की आज्ञा दी। उपयुक्त औषधोपचार होनी चाहिए। ऐसी आज्ञा देकर स्वयं उस घटना के सम्बन्ध में हताशचित्त विचार करते करते दीवानखाने में जाकर बैठ गये।

पुरोहित का यह दुष्कृत्य जिस समय मृगावती को विदित हुआ, उस समय उससे चुप-शान्त नहीं रहा गया। उसने स्वयं जेलखाने में जाकर उस तरुण की जानकारी प्राप्त की और उसकी भले प्रकार सुव्यवस्था कर लौट आयी।

पूजा प्रारम्भ के दिन से आज तक आठ तरुण बन्धनबद्ध हो जेल में आ पड़े। मात्र नवमी का एक ही दिन बाकी था। पूजा के नो दिन होने के बाद दशमें दिवस बलि होने वाली थी। बलिपूजा अन्तिम दिन में ही होती थी। यदि यह बलि बन्द नहीं हुई तो आचार्य महाराज आजन्म उपवास करने वाले हैं। यह विचार जैसे ही उसके चित्त में आया कि वह अत्यन्त कष्ट में पड़कर अपने कमरे की ओर गई।

यात्रा करने वाले लोगों में भी यही चर्चा चालू थी। स्थान-स्थान पर पेड़ों की छाया में पांच, दश मनुष्य इकट्ठे बैठकर परस्पर इसी सम्बन्ध में परामर्श कर रहे थे। सत्य देखो, तो यह पशुबलि देना अयोग्य ही है। इस प्रकार के शब्द अधिकांश लोगों के मुख से निकल रहे थे। माणिकदेव पुरोहित का अमानुषिक व्यवहार देखकर-अन्याय अनीति का कृत्य प्रत्यक्ष देख कर सबका मन दुःखी था।

नवमी का दिन भी आ गया। आज बहुत लोग पूजा देखने को एकत्रित हुए थे। परन्तु किसी के भी मुख पर उत्साह नहीं था। प्रसन्नता नहीं थी। सबका मन चिन्तातुर था कि आज न जाने क्या नवीन घटना होगी। हमेशा की भाँति आरती की ओर किसी का भी लक्ष्य नहीं था।

आज भी कोई एक तरुण आने वाला है क्या ? इसी की सबको आतुरता लगी थी। आरती का घण्टानाद बन्द हुआ। सबों ने पीछे मुड़कर देखा, तब तक एक धरमवीर "अहिंसा परमोधर्मः" गर्जना करता आ धमका। महाद्वार पर अहिंसा की जय-जय घोष सुनाई पड़ने लगी। पुरोहित के अन्यायवर्तन से उसका मन उचाट-उचाट हो रहा था। उसके हृदय में भी दयांकुर उत्पन्न हुआ था। वीर का आह्वान स्वरूप शान्त गर्जना सुनते लोगों का शरीर पुलकित हो गया। यही नहीं उसी के स्वरानुसार कितनों ने ही "अहिंसा धर्म की जय हो" यह जय-जयकार भी किया।

उस तेजस्वी प्रभावी, तरुण ने बड़े उत्साह से अपना बोलना प्रारम्भ किया। "मेरे प्यारे धर्मबन्धुओ ! आज की रात्रि पूर्ण होते ही प्रातः सूर्योदय के साथ ही मूकपशुओं की बलिपूजा होने वाली है, अभी भी समय गया नहीं, अवसर है। इस अधर्म कृत्य को बन्द करने का प्रयत्न करो, निश्चय करो, देवी के नाम पर चलने वाली इस घोर हिंसा को रोकने पर ही आपका सही कल्याण होने वाला है। इसी मल्लिपुर नगर में आचार्य अमरकीर्ति नाम के आचार्य महासाधु भी हिंसा के बन्द करने का प्रयत्न कर रहे हैं। यदि आपने पूर्णतः यह बलि प्रथा नहीं रोकी तो वे आमरणान्त उपवास करने वाले हैं। आप लोगों के हृदय में यदि दया का झरना फूट गया है तो हजारों मूक-प्राणियों को जीवनदान प्राप्त होगा। प्राणदान परमधर्म है न कि प्राणिघात। उन महापुरुष के प्राण संशय में नहीं पड़ें ऐसा यदि आपके मन में विचार है तो प्रातः बलि नहीं देना ऐसा निश्चय करो। आज पर्यन्त अज्ञान वश आपने बिना विचारे यह कुकृत्य किया है तो आगे से अब सावधान हो कर दया धर्म का अवलम्बन लो। जहाँ दया नहीं, वहाँ धर्म ही कैसा ? और देवी ही कैसी ? अनेक जीवों का संहार करने वाली देवी-देवता द्वारा आपका कल्याण कभी भी होने वाला नहीं, इसलिए, आप यह हिंसा कभी मत करो"

उस तरुण के उपदेश ने सबका मन आकर्षित कर लिया। जाते-जाते भी अधिकांश लोग कह रहे थे 'दयाधर्म' यही सच्चा धर्म है। बहुतों को यही धर्म सच्चा प्रतीत होने लगा। तल्लीन होकर सब लोग उसका उपदेश सुन रहे थे। उतने ही में बड़े वेग से माणिकदेव उस तरुण पर दौड़कर आया। परन्तु लोगों ने मध्य में ही उसे दबा कर पकड़ लिया। और सब लोगों ने जोर से जयनाद किया "अहिंसा धर्म की जय" अहिंसा परमोधर्मः।"

उस अहिंसानाद से आकाश भर गया। लोगों में जागृति हो जाने से

कुमार महेन्द्र द्वारा पशुबलि बंद करने एवं अहिंसाधर्म का उपदेश।

पुरोहित की कुछ भी नहीं चली। मात्र शाप देता, सबको गाली-गलौच एवं अपशब्द बोलता हुआ वह देवी के गर्भगृह में चला गया। लोगों का बहुत वाद-विवाद चलने लगा। इतने में राजसैनिक आगे आये और उन्होंने उस तरुण को पकड़ा, तथा राजप्रासाद की ओर ले गये। अब क्या था, इस घटना से तो लोगों में विशेष असन्तोष छा गया। वे और जोर से जयघोष करने लगे। "अहिंसा धर्म की जय" "अहिंसा परमोधर्मः।"

उस दिन सवेरे से अर्थात् ग्यारह बजे से लगभग अपने महल की गच्ची पर ही बैठी मृगावती देवी के मन्दिर की ओर ही देखती रही। आज भी कोई एकाद अहिंसा का उपदेश करने वाला वीर युवक कोई आने वाला है क्या ? आया है क्या ? उसे भी बन्दी बनाकर लाते हैं क्या ? इसी का वह विचार कर रही थी कि उसी समय एक तरुण को बन्दी बनाकर राजद्वार की ओर लाते हुए सैनिक उसे दिखाई पड़े। उनके अत्यन्त निकट आने पर उस—मृगावती ने उस तरुण को बड़ी गौर से देखा। उसका चेहरा देखते ही एकदम फीका पड़ गया। उसे अपने नेत्रों पर विश्वास नहीं हो रहा था। उसका शरीर सिहर उठा। रोम-रोम खड़ा होगया। उसके सर्वअङ्ग थर-थर कांपने लगा। कौन ? महेन्द्र ? महेन्द्र ? हाय हाय! "ऐसे होठ हिलाते—बुड-बुडाती धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ी। वह कोई दूसरा, तीसरा कोई नहीं था, अपितु चम्पानगर का युवराज महेन्द्र ही था। मृगावती को लिखे पत्रानुसार वह आज आचार्य श्री के दर्शनों को आया था। वे प्रतिज्ञाबद्ध आठों वीर अपना-अपना कर्त्तव्य पालन करते हुए कैदखाने में बन्दी हो चुके हैं, यह उसे विदित हो गया। आचार्य श्री जी उपवास किये मौन धारण कर विराजमान थे। उसी कारण नवमें दिन महेन्द्र ने स्वयं वह दिन अपने ऊपर लिया। उसने राजपोशाक उतारदी। अलंकारादि सब फेंक दिये। सामान्य वेष में अत्यन्त साधारण पुरुष की भांति देवी के मन्दिर की ओर आया था। इसी कारण यह कोई राजकुमार है। ऐसी किसी को भी कुछ भी कल्पना नहीं हुई थी। जिस समय उसे पकड़ कर राजमहल की ओर ला रहे थे, उस समय मृगावती ने ही उसे पहिचाना था। उसकी दशा क्या हुयी यह ऊपर बता ही दिया है। महेन्द्र अपने ही विचारों में डूबा चला जा रहा था। इस कारण मृगावती की ओर उसकी दृष्टि नहीं गई थी। उसे सीधे जेल की कोठरी की ओर लेकर आये। मृगावती को एकाएक यह क्या हुआ ? इधर-उधर से कई दासियां दौडकर उसे देखने को आ गईं। और सचेत करने का प्रयत्न करने लगी।

राजप्रासाद में खून-हत्या–११

उस रात्रि के पूर्ण होते ही प्रात: सूर्योदय के साथ ही देवी के सामने बलि चढ़ने वाली है। देवी की पूजा होते-होते ६ दिन पूर्ण हो गये। परन्तु एक भी दिन निर्विघ्न पार नहीं पड़ा। प्रतिदिन सवेरेही आरती पूरी होते न होते वही एक न एक तरुण-नवयुवक अहिंसा का उपदेश करता, "अहिंसा परमो धर्मः" जयघोष करता आता रहा, और देवी को पशुबलि नहीं देना, इस विषय पर अत्यन्त मार्मिक ढङ्ग से उपदेश देता रहा। उन सभी को माणिक देव ने पाखण्डी घोषित कर जेल में भेज दिया सभी कैदी बनवा दिये थे, तो भी उपदेश से सैंकड़ों लोगों का हृदय परिवर्तित हो गया था, उनके उरस्थल से दया का झरना फूट पड़ा, उसको निर्मल गंगा सी धारा औरों की भी हिंसात्मक भावना रूप कल्मष का प्रक्षालन कर रही थी। धर्मात्माओं की संख्या वृद्धि देख माणिकदेव को सन्देह हो रहा था कि संभवत: सम्पूर्ण जनता भी इसी तरह बलिपूजा का विरोध करे। "यह बलिपूजा होगी कि नहीं ?" इसी चिन्ता में वह झुलस रहा था।

प्रथम दो तीन तरुणों के कैदी होने तक जनता में कुछ भी जाग्रति नहीं हुयी अपितु वे उल्टे देवी का ही चमत्कार समझ कर उसी की सामर्थ्य की प्रशंसा कर रहे थे। कालीमाता का ही माहात्म्य समझ रहे थे। परन्तु जब प्रतिदिन ही एक एक नवयुवक जेल में पड़ने लगा, उन निरपराध तरुण की शान्तता, मधुरता, तेजस्वी मुद्रा, प्रियवाणी, प्राणियों पर दया करने की उनकी छटपट हट, मार्मिक उपदेश और उनकी सहनशीलता देख-देख कर लोगों का हृदय द्रवित होने लगा था। उनकी वृत्ति-परिणति अहिंसा की ओर झुकने लगी। कितनों में याचना कर बलि नहीं देना यह चर्चा भी चालू हो गई। आचार्य अमरकीर्तिजी ने उपवास शुरू किये, इससे भी कदाचित जनता में क्षोभ उत्पन्न होता, इसका कोई नियम नहीं था। पद्मनाभ राजा ने पुरोहित के कथनानुसार यदि सर्व प्रयत्न किया होता तो भी इन अनेक कारणों से उसका मन स्थिर रहता, यद्यपि राजघराने के भी अधिकांश लोगों का झुकाव मुनिमहाराज की ओर ही था, मृगावती ने तो हिंसाकर्म बन्द

करने का निश्चय ही किया था, इसी कारण ऐसा लगता था कि उसी ने महाराज को उपवास करने का बढ़ावा दिया, और बलिपूजा को उखाड़ने का निश्चय किया। ठीक है, तो भी पद्मनाभ का मन बदलने वाला नहीं है। परन्तु न जाने क्या हो? ऐसा तर्क-वितर्क कर माणिकदेव ने अपना निश्चय कार्यरूप करने का निर्णय किया और अपने राक्षसरूप नरसिंह शिष्य को बुला कर कहा--

"वत्स, आज का अन्तिम दिन है। देवी की महिमा और मेरी प्रतिष्ठा स्थित रहनी चाहिए। यह सब तेरे ही हाथ में है। आज रात्रि को बारह बजे के अन्दर ही अन्दर देवी को राजकन्या के रक्त का टीका लगना है? और प्रातःकाल सबको यह निश्चय होना चाहिए कि देवी का अपमान करने से राजकन्या को भी मृत्युदण्ड भोगना पड़ा। बलि बन्द करने का वह प्रयत्न कर रही है न? जा आज रात्रि प्रथम उसी की बलि देकर पुनः प्रातः पशुबलि प्रारम्भ करनी है? समझे? जा, जा............।

एक क्षण पहले नरसिंह का हृदय अनेकों विचारों से आन्दोलित था। इस समय माणिकदेव के भाषण से पवन रहित सागर की भाँति स्थिर हो गया। यही नहीं रात्रि के बारह बजने के पहिले-पहिले मृगावती का रक्त लाकर देवी के ललाट पर तिलकार्चन करूंगा। ऐसी देवी के सम्मुख जाकर उसने दृढ़ प्रतिज्ञा की।

× × × × ×

युवराज महेन्द्र को भी पकड़ कर जेल में कैदी बनाकर लाया गया है, यह देखते ही मृगावती बेहोश होकर गिर पड़ी थी। उसे शीतोपचार कर सचेत किया गया, सखियों ने उसे उसके कक्ष में ले जाकर सुला दिया। सायंकाल पर्यन्त वह विचार मग्न हुयी सश- चुप-चाप पड़ी रही। उस दिन उसने भोजन भी नहीं किया। वह किसी से कुछ भी बोली भी नहीं थी। संध्या समय देवी के दर्शन कर वापिस आने के बाद पद्मनाभ महाराज मृगावती के पास जाकर बैठ गये। उसकी प्रकृति बहुत ही असक्त हो गई थी। उसका निस्तेजपना देखकर राजा को बहुत दुःख हुआ। क्योंकि वही तो उसकी एक मात्र सन्तान थी। उसी के लिए धर्म-कर्म विहीन हो पशुबलि प्रारम्भ की थी। उसे कुछ समझा बुझा कर किसी प्रकार प्रसन्न करना, उसका दुःख निकालना ऐसा राजा का विचार था परन्तु इस समय उसकी हालत देखकर

कुछ न बोलना ही ठीक है, कदाचित् कुछ बोलने से उसके मन पर कोई और ही परिणाम न हो जाय यह विचार कर वह उससे अधिक कुछ नहीं बोले। उसे "शान्ति से विश्रान्ति लो" कह कर बाहर चले गये।

रात्रि आगई। घण्टे पर घण्टे बीते। अब दस बज गये। मृगावती जागी ही थी, उसे नींद कैसे आती? इधर चम्पानगर का राजकुमार जेल में पड़ा था। उधर आचार्य श्री अमरकीर्तिजी के आज ८ उपवास हो गये थे। आज की रात्रि व्यतीत होते ही बलि होने वाली है और आचार्यजी को आजन्म उपवास करना होगा, ये सब बातें उसके समक्ष चलचित्र बने थे, भला उसे स्वस्थता कहाँ? नींद कैसे आती? वह बार-बार इस कुर्सी से उस कुर्सी पर, उससे इस शोफा पर बराबर उठ बैठ कर रही थी। उसकी धड़-पड़ बढ़ती जा रही थी। बीच-बीच में वह भय से चौकने के समान कर रही थी। इसी से उसकी सखी उसके बहुत नजदीक ही पलंग पर सो रही थी। ग्यारह बज गये। तो भी मृगावती को—तनिक भी नींद नहीं आयी। अपनी सखी को गहरी नींद में देखकर वह अति धीमे-धीमे उठी और बैठ गयी। उसने बहुत देर तक बैठकर विचार किया और सर्वत्र स्तब्धता-नीरवता फैली देखकर, वह अपने कमरे से बाहर निकली।

निर्मूल चन्द्रिका छिटक रही थी। बीच-बीच में बादलों का समूह का समूह आने से अंधकार भी हो जाता था। वह बहुत धीमे-धीमे पाँव रखती सीढ़ियों को पार करने लगी। क्षणमात्र में नीचे आगई। सर्वत्र नीर-वता छाई थी। चारों ओर शान्त वातावरण देख रही थी। इधर-उधर देखती हुई वह जेल की ओर चल पड़ी। राजमहल के ठीक पास ही पीछे में जो पुरानी इमारत थी उसी में वे कैदी कैद किये गये थे। राजकन्या को पहिचान कर जेल के एक पहरेदार ने आदर से उसे हाथ जोड़ नमस्कार किया, उसने कहा—

"माते आप बहुत ही दयालु हैं। उस जख्मी कैदी की निगरानी करने देखने को आप इतनी रात्रि में पधारी हैं। यह देखकर मुझे बड़ा ही आश्चर्य लगता है। वास्तव में निश्चित ही उसकी अवस्था बहुत ही चिन्ता-जनक है। उसके कपाल से अभी भी थोड़ा-थोड़ा रक्त बह रहा है।"

उसी घायल का कुशल-समाचार लेने राजकुमारी आई है, यह समझ कर ही वह इस प्रकार बोल रहा था। वह आगे कहने लगा—

"उस कमरे को खोलूँ क्या ?"

"मृगावती ने गर्दन हिला कर सम्मति दी। द्वार खुला एक कमरे का। धीरे से वह अन्दर गई। परन्तु उस समय वह नींद ले रहा था। अतः अति धीमे से वह वापिस आगई और पहरेदार से बोली—

"उस घायल को अभी अभी निद्रा आई है ऐसा लगता है। सोने दो—बेचारे को। परन्तु आज आने वाला तरुण नवीन कैदी कहाँ है ? यह तुम्हें मालूम है क्या ?"

"हाँ हाँ पता है न ! देखो, उस दूसरी ओर की कोठरी में है" इस प्रकार कहते हुए उसने उस रूम का दरवाजा बन्द किया। ताला लगा दिया।

"राजकन्या बहुत ही धामी आवाज में बोली, देखो वे किल्ली (चाबी) इधर दो मुझे। और थोडी देर तू यहाँ ही पहरा देता हुआ बैठ।" उस नवीन कैदी की मुझे कुछ थोडी चौकसी करनी है।"

इस प्रकार कह कर राजकन्या ने चाबियाँ लेली। मृगावती उस कमरे का द्वार खोलने लगी। और पहरेदार आश्चर्य से वहीं खडा देखता रहा।

महेन्द्र जाग्रत सावधान था ताले की आवाज सुनते ही उसने गर्दन उठाकर ऊपर देखा। इतनी रात्रि में कोठरी का द्वार खुलता देख उसे भी एक बार आश्चर्य हुआ। वह चट उठ कर बैठ गया। कमरे में एक लैंप धीमी-धीमी जल रही थी। मृगावती को आती हुई देख वह महान आश्चर्य से बोला "कौन ? मृगावती ?"

"हाँ, मैं ही हूँ" इतना ही बोलकर वह चुप हो गई। उसका कण्ठ रुद्ध हो गया। क्षणभर कोई भी एक दूसरे से कुछ नहीं बोला।

"लेकिन, तुम इतनी रात्रि में यहां क्यों आई" उस शान्त चुप्पी को भंग करते हुए युवराज महेन्द्र बोला धीरे से।

"आपको मुक्त करने के लिये।" मृगावती अश्रु पोंछती हुई बोली। आज का समय कितना कार्यकारी खतरनाक है यह क्या आप नहीं जानते ? यदि आपने कोई भडपड नहीं की तो प्रातः पशुबलि होने वाली है और साथ ही आचार्य श्री का आमरण उपवास प्रारम्भ हो जायेगा।"

"हाँ, सत्य है, परन्तु इस समय मुझ से क्या होने योग्य है ? क्या कर सकता हूँ मैं ?"

"क्यों ! जो उचित समझो वही करने का हो सकता है। आप इतने हताश नहीं होओ। आप बाहर आइये, प्रथम आचार्य श्री के पास जाइये, गुहा की ओर जाओ। क्योंकि उनके दर्शन से आगे क्या करना है यह आपको स्वयं समझ पड़ेगा।"

"परन्तु मृगावती, तुम्हारा जीवन खतरे में डालकर, मैं इस प्रकार निकल गुप्त रीति से भाग जाऊँ यह मुझ से कभी नहीं होने वाला है।"

"कुछ भी होने दो, तुम आओ, इस विपत्ति काल में—संकटापन्न दशा में बाहर आकर जितना शक्य हो सके उतना प्रयत्न करना ही चाहिए। चलो, उठो, पहले आगे चलो।"

इस प्रकार कह कर मृगावती ने महेन्द्र का हाथ पकड़ कर उठाया, उतने ही में ऊपर के कमरे में से एक जोर की चीख सुनाई पड़ी। यह आवाज हृदय विदारक थी। अपनी कोठरी से ही यह चीत्कार आई है ऐसी मृगावती को शङ्का उत्पन्न हुई। वह शीघ्र ही निकल कर अपने कमरे की ओर दौड़ी, महेन्द्र भी उसके पीछे-पीछे दौड़ पड़ा।

मृगावती के कमरे से उस भयानक चीख को सुन कर राजमहल के ही अनेक लोग दौड़ पड़े। उधर आये। मृगावती सब से पहले सीढ़ियों पर जाकर पहुँच गई थी। कमरे का दीपक टिमटिमा रहा था। सीढ़ियों पर किसी के आने की आहट पाते ही किसी ने कमरे की खिड़की से कूद कर बाहर छलांग लगाई। उसके शरीर पर काला बुरका था। वह दौड़कर जाने ही वाला था कि महेन्द्र युवराज नें दौड़कर उसे पकड़ा उन्होंने उसकी कमर कस कर पकड़ली।

डरते-डरते दीपक लिए सब लोग मृगावती के कमरे में एकत्रित हो गये। देखा, कि कमरे का पूरा फर्श रक्त से लथ-पथ था। पलंग पर सोई उसकी सखी के हृदय में किसी ने कटार घुसा कर वध किया है।

राजमहल में और उसमें भी राजकन्या के कमरे में यह खून-हत्या हुयी इससे सबको अत्यन्त ही आश्चर्य हो रहा था। सब चकित हो गये। क्या हुआ ? कैसे हुआ ? क्यों हुआ ? किसी की समझ में नहीं आरहा था।

देवी का अस्तित्व समाप्त हुआ-१२

मृगावती के शयनकक्ष में खून-हत्या हो गयी, यह बात एक क्षण में राजमहल में चारों ओर बिजली की भाँति फैल गई। घबरा-घबरा कर सब लोग उसके कमरे की ओर दौड़ पड़े। पद्मनाभ राजा भी स्वयं आ पहुँचे। वहाँ, शैया और रक्त धारा से लथपथ कमरा देख वे दंग रह गये। उनका कलेजा मानों बाहर आ गया। मृगावती की दासी का खून होने का क्या कारण हो सकता है? इसका कोई भी निश्चय-स्पष्टीकरण उसे नहीं हो सका। वे सब के सब भय, आतंक और आश्चर्य से एक दूसरे का मुख देखते हुए स्थम्भित खड़े थे। इतने ही में उस बुरके वाले हत्यारे मनुष्य को लेकर महेन्द्र वहाँ आया। उन दोनों अपरिचित मनुष्यों को राजमहल में देखकर लोग और अधिक हक्के—बक्के हो गये।

उस रक्त से लथ-पथ कटार की ओर इशारा करते हुए महेन्द्र बोला, "यह देखो, खूनी अपराधी! ऊपर की खिड़की से कूद कर भागा जा रहा था कि मैंने उसे पकड़ा और यहाँ लेकर आया।"

उस खूनी—हत्यारे मनुष्य को लेकर आने वाला मनुष्य कौन है, यह पद्मनाभ ने नहीं पहिचाना। परन्तु काला बुरका खींचकर उघाड़ते ही वह हत्यारा कौन है? यह उसे तुरन्त समझ में आ गया। वह तो उसका रोज का जाना—पहिचाना माणिकदेव का पट्टशिष्य नरसिंह ही था। उसका काला बुरका उतारकर फेंक दिया और महेन्द्र उसका हाथ पकड़े खड़ा था। यह खून उसे क्यों करना पड़ा? क्यों किया यह कुछ भी स्पष्ट नहीं हो पा रहा था।

हत्या करने वाला नरसिंह बन्धनबद्ध रंगे हाथ पकड़े जाने पर भी जरा भी भयातुर नहीं था। वह घबराया नहीं। नीची गर्दन किये चुपचाप खड़ा था। महाराज ने उसकी ओर भेदक दृष्टि से देखते हुए कहा, "नरसिंह मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ। यह किस प्रकार ऐसा हुआ है तुम स्पष्ट बताओ? इस लड़की का खून किसने किया है?"

मृगावती के शयन कक्ष में दासी की हत्या, कुमार महेन्द्र द्वारा हत्यारे श्री नृसिंह को पकड़ कर मारना।

नरसिंह के अधर चंचल होने लगे। उसके नेत्रों से अश्रुप्रवाह चल रहा था। विचार करने का अवसर पाते ही उसकी भावना बदल गयी और उसे अपने कृत्य पर लज्जा आ रही थी। इसीसे वह चुप चाप शान्त खड़ा था। महाराज के पूछते ही, वह अत्यन्त पश्चाताप से हिचकी भरता हुआ महाराज पद्मनाभ के चरणों में धडाम से गिर पड़ा। और फूट-फूट कर रोने लगा सभी लोग इस विचित्र दृश्य को आश्चर्य चकित हो देख रहे थे। क्षण भर रोने के बाद उसने अपना शिर ऊपर उठाया, हाथ जोडकर वह धीरे-धीरे बोलने लगा—

महाराज, क्षमा करे। यह समस्त दुष्कर्म मैंने ही किया है। पुरोहित के कथनानुसार कार्य करते हुए मेरा पूर्ण पतन हो चुका है। उस पापी की आज्ञानुसार आजतक मैंने ऐसे अनेकों अमानुषिक कृत्य किये हैं। न जानें कितनी हत्याएँ हुयी हैं। इसके आगे मेरे हाथ से इस प्रकार के और अत्याचार-अनाचार व रक्तपात न हों इसके लिए मैं सर्व गोष्ठी—आपके सामने स्पष्ट कर रहा हूँ। मेरे कुकर्म का मुझे पूर्ण पश्चात्ताप हो रहा है। इसके दण्ड में यदि आप मुझे प्राण दण्ड देना चाहेंगे तो मैं उसे सहर्ष, आनन्द से भोगने को तैयार हूँ।

आप जिस माणिकदेव पुरोहित पर विश्वास कर, उसे परम पूज्य गुरु मानते हैं, उसकी इच्छानुसार आप चलते हैं, उसी माणिकदेव ने आज मुझे ....आज...............आपकी...............कन्या का वध करने के लिए भेजा था।

नरसिंह के मुख से ये भयंकर शब्द सुनते ही सभी के शरीर में रोमाञ्च भर गया, परन्तु सुयोग से मृगावती बच गयी यह देखकर सर्व जन उसे प्रेम से-स्नेह से देखने लगे। नरसिंह पुनः आगे बोला—

मैं पुरोहित की इच्छानुसार उसके कार्य के लिए कितनी बार यहाँ अन्तः पुर में आता रहा हूँ। इसी कारण कौन कहाँ रहता है यह मुझे पूर्ण रीति से मालूम है। राजकन्या बलिपूजा का विरोध कर रही है, हिंसा को रोकने के लिए वह प्रयत्नशील है, ऐसा ज्ञात होने से, आज रात्रि को उसकी हत्या कर उसी के रक्त का टीका देवी को प्रथम लगाना चाहिए ऐसी पुरोहित ने मुझे आज्ञा दी, वह मुझ पर कुपित न हो इसके लिए मैंने उसकी आज्ञा को स्वीकार किया। मात्र उसकी प्रसन्नता को मैं इस कृत्य के करने

को तैयार हुआ । मैं जिस समय यहाँ आया, सर्वत्र शान्तता थी । जिस मार्ग-सीढ़ियों से मैं राजकन्या के कक्ष में प्रविष्ट हुआ, वहाँ जलते हुए दीपक के मन्द मन्द प्रकाश में पलंग पर कोई स्त्री सो रही है, यह दिखलाई पड़ा । यह राजकुमारी ही होना चाहिए ऐसा निश्चय कर प्रथम दीपक बुझाया और फिर यह कटार उसके हृदय में घुसादी । एक जोर की चीख के साथ वह गत प्राण हो गई । रक्त से भरी कटारी लेकर मैं ज्यों ही बाहर आने को हुआ कि त्यों ही सीढ़ियों से किसी के आने की पदचप्पी सुनाई दी । 'कोई आ रहा है' यह सोचकर मैं बगल की खिड़की से कूद पड़ा । जैसे ही कूदा कि इसने (महेन्द्र को दिखाकर) मुझे जोर से बाहुपाश में बांध कर-पकड़ लिया । मैं यह बहुत खोटा दुष्कर्म कर रहा हूँ यह मुझे बराबर लगता था परन्तु विवशता वश करने को प्रेरित हुआ था, इसी कारण आज मेरे पकड़े जाने पर मैंने कोई प्रतिकार नहीं किया । सौभाग्य है, गुरुदेव से आज मेरे हाथों से इस सुकुमारी राजपुत्री का बध नहीं हुआ इसका मुझे बहुत ही आनन्द हो रहा है । मेरे इस कृत्य का मुझे पूरा-पूरा पश्चात्ताप हो रहा है । महाराज !"

इस प्रकार कह कर उसने एक दीर्घ श्वास छोड़ी । एवं करबद्ध हो पुनः एक बार क्षमा याचना की । इसके अनन्तर मृगावती ने भी लज्जा छोड़कर अपनी सारी कथा–क्रिया अपने पिता को सबके सामने स्पष्ट सुनादी । उस कन्या का धैर्य और कर्त्तव्यनिष्ठता देख कर सबको बहुत ही कौतुक हुआ । मृगावती द्वारा कथित विवरण को सुनते ही नरसिंह को पकड़ने वाला कोई सामान्य कैदी नहीं है, अपितु चम्पानगर का युवराज है, यह सबको निश्चित रूप से विदित हो गया । यह दृश्य देख-सुनकर पद्मनाभ राजा को अपनी विपरीत धारणा और वर्तनाका पूरा पश्चात्ताप हो रहा था । वे शीघ्र ही आगे आये और महेन्द्र युवराज को हृदय से लगाकर गद्‌गद् वाणी में बोले—

"युवराज ! युवराज ! क्षमा करो, मेरी ओर से भयंकर अपराध हुआ है । तुम्हें नहीं पहिचान कर एक सामान्य पुरुष की भाँति कैद कर जेल में डालने का बड़ाभारी अपराध मुझ से हुआ है कुमार ! इस अविचार को क्षमा करो ? कुछ भी हो, आपके आगमन से आज मेरी पुत्री का प्राण रक्षण हुआ है । इससे मुझे परमानन्द हो रहा है ।" इस प्रकार कहते हुए पद्मनाभ राजा ने बड़े प्रेम से महेन्द्र का हाथ पकड़कर अपने पास बैठाया । मृगावती

भी वहीं खडी थी। उसको अपने पास बुलाकर ममता से उसके शिर पर हाथ फेरते हुए, गोद में लेकर बोले, "बच्ची, तुम्हारा भाग्य बड़ा तेज है, इसीसे ये राजकुमार यहाँ कैदी होकर आये। उनके आने से ही तुम्हारे प्राण आज बच सके।" ऐसा कह उन्होंने उन दोनों की ओर देखा। मृगावती ने लज्जा से गर्दन नीची करली। वह कुछ भी नहीं बोली।

पश्चात्ताप से झुलसा नरसिंह दुःख से जमीन की ओर देखता हुआ बैठा था। उसकी ओर दृष्टि जाते ही महाराज पुनः बोले—

"नरसिंह! मृगावती के रक्त का ही टीका कालीदेवी को लगना चाहिए क्या यह देवी की आज्ञा थी ?"

महाराज !, आप अत्यन्त भोले और भावुक हैं। आपके इस भोलेपने के कारण ही माणिकदेव ने अपने इतने षड्यन्त्रों को सिद्ध किया है। अब भी आपको देवी की आज्ञा पर विश्वास है ? यह देखकर मुझे अत्यन्त आश्चर्य हो रहा है। महाराज पत्थर की देवी कोई—बोलती है क्या ? नर-सिंह ने साधिकार कहा। सुनते ही

"हैं इसका अर्थ क्या ?" महाराज अधिक उलझन में पडकर बोले, "देवी बोलती नहीं थी ? तो कौन बोलता ?" मैंने स्वयं कान से सुना है देवी का आदेश। तू क्या बोल रहा है यह ?"

"हाँ, हाँ, महाराज आपने प्रत्यक्ष सुना है, देखा है, परन्तु यह आपको दिशाभूल थी। भोले लोगों को फँसा कर देवी का महत्व बढाने की यह एक कला है। और आज मैं प्रथम बार उस कला का भंडाफोड कर रहा हूँ।"

नरसिंह के इस कथन को सुनते ही सब लोग उत्कण्ठित होने लगे, सबके नेत्र उसी की ओर जा लगे। थोडी देर स्थिर रह कर पुनः वह अपना वक्तव्य देने लगा—

इस समय जो काली माता की मूर्ति है, वह पोली है, पास के मठ से उसके सिंहासन पर्यन्त एक भुयार-तलघर तैयार कराया हुआ है। जब, जब देवी बोली थी, उस-उस समय मैं स्वयं उस सुरंग रूप तलघर से होकर मठ से आकर, देवी के सिंहासन के नीचे बैठता था और पूर्व निश्चित किये विषय के अनुसार, माणिकदेव के प्रश्नों का उत्तर मैं ही देता था। इस प्रकार भोले

जीवों को फँसाने वाली कला को हम दोनों के सिवाय अन्य कोई नहीं जानता। यह सारा जाल प्रसार देवी के नाम पर चलने वाले अन्याय और अत्याचार से मेरा मन यद्यपि घुट रहा था। कई बार इस हिंसाकाण्ड से अन्तःकरण द्रवित होता परन्तु बर्साती नदी की भाँति माणिकदेव के आतंक से सूख जाता। कैसे इस बलिप्रथा को रोका जाय यह कितनी बार मेरे मन में भी आता। इसका हेतु उन जैनाचार्य का उपदेश है जिसे अवसर पाकर मैंने सुना था और लोगों से समझा था। उनके दयामय धर्मोपदेश ने मेरी चित्तवृत्ति बिलकुल बदल दी।, परन्तु धूर्त माणिकदेव की संगति के कारण वे विचार अधिक देर ठहर नहीं पाते थे। फलतः पुनः मैं उसके फंदे में फंस कर इस दुर्मार्ग पर लग गया।"

नरसिंह के मुख से यह समस्त रहस्य प्रकट किये जाने पर महाराज पद्मनाभ की पगतले की जमीन धंसने लगी। उसे माणिकदेव पर बुरी तरह कोप आया। उसी के विपरीत उपदेश से उसने अपना क्षात्रधर्म, दयाधर्म, कुलधर्म त्याग दिया था। देवी के नाम पर उस अधर्मी के कहने पर हजारों प्राणियों का संहार कराया। इसका उसको पश्चात्ताप होने लगा।

अब आगे समय नहीं गवाना चाहिए, सूर्योदय होने के पहिले ही पुरोहित के काले कारनामे फोड कर प्रकट कर उसे पकडना चाहिए। ऐसा निश्चय कर वह चट से उठा और मृगावती तथा महेन्द्र इनको भी साथ में ले वे देवी के मन्दिर की ओर चल पडे। जेल में कैद किये गये आठों तरुण वीरों को भी मुक्त कर साथ में ले लिया।

पश्चात्ताप से व्यथित नरसिंह ने स्पष्ट शुद्ध अन्तःकरण से अपना अपराध स्वीकार कर लिया था। अपने अपराध की बार-बार क्षमा याचना की, मृत्युदण्ड भी आनन्द से स्वीकृत करने को तैयार था। इसी कारण राजा पद्मनाभ ने उसकी स्पष्टवादिता से क्षमा प्रदान करदी थी। उसे किसी भी प्रकार का दण्ड न देकर अपने साथ देवी के मन्दिर की ओर आने का उपदेश दिया। परन्तु माणिकदेव का मुँह नहीं देखना, यह निश्चय कर नरसिंह देवी के देवल की ओर न जाकर सीधा आचार्य श्री की गुफा की ओर चलता बना।

× × × × ×

मध्यरात्रि व्यतीत हो गई । नवमी का चाँद ही अस्त हो गया । प्रात: कालीन शीत पवन चलने लगी, परन्तु अभी तक नरसिंह वापिस नहीं आया । यह देखकर माणिकदेव चिन्ताग्रस्त बैठा था । उधर कितने ही दिनों से नरसिंह के हृदय में अपने कुकर्मों के प्रति संशय उत्पन्न हो चुका है यह उसे मालूम था । इस कारण मेरा कार्य आज सिद्ध होगा कि नहीं इसकी उसको शंका थी । वह कपाल पर हाथ रखकर शोकातुर विचारमग्न था । उसका हृदय रह-रह कर सन्देह से भर जाता था । इसी समय पद्मनाभ राजा उन सबके साथ देवी मन्दिर में गये । मन्दिर में नन्दी दीप के सिवाय दूसरा दीपक नहीं था । वह भी धीमा-धीमा जल रहा था । उसके मन्द प्रकाश में कौन-कौन आ रहे हैं यह उसे स्पष्ट नहीं दिख रहा था ।

नरसिंह तो आया ही नहीं, परन्तु अन्य सात-आठ तरुणों के साथ मृगावती को लेकर पद्मनाभ महाराज मेरे सामने खड़े हैं यह उसने देखा । यह देखते ही उसके छक्के छूट गये । उसको सोचने-विचारने को भी समय नहीं देते महाराज पद्मनाभ ने उसकी गर्दन पकड कर क्रोध से बोले, "ओ हरामखोर तेरी देवी राजकन्या का रक्त चाहती है" ? बोल, जल्दी बोल तेरी देवी ने तुझे वैसी आज्ञा दी है क्या ? महाराज उसकी ओर इतनी क्रोध पूर्ण दृष्टि किये थे मानों उनकी आंखों से चिनगारियां निकल रही हों ।

परन्तु इतने मात्र से, जैसे कुछ उसे समझ ही में नहीं आ रहा हो ऐसा अनजान सरिखा साधारण नहीं था । वह कोई कच्चे हृदय वाला नहीं था । नरसिंह ने मेरे सारे काले कारनामे प्रकट कर दिये हैं ऐसा उसे स्वप्न में भी विश्वास नहीं था । वह मेरे कारस्थानों को उघाड़ सकता है यह उसने सोचा ही नहीं था क्योंकि उसे पूरी तरह अपने फंदे में फँसा रक्खा था । इसी कारण तिलमात्र भी सन्देह नहीं करता हुआ, वह दृढ़ता और निर्दयता से महाराज की ओर देखता हुआ बोला, हाँ, हाँ ! "देवी ने वैसी ही आज्ञा दी थी ।"

माणिकदेव का यह धिटाई का उत्तर सुन कर महाराज सन्तप्त हो उठे, उनका कोपानल भडक उठा और भभक कर बोले, "मूर्ख ! तेरी देवी बोलती है" ? ठीक है । विचार, तेरी देवी से मेरे सामने प्रश्न पूछ ! यदि उसे राजकन्या का ही रक्त चाहिए तो मैं, अभी देने को तैयार हूँ । यदि देवी नहीं बोली तो आज तेरी जीवन लीला भी समाप्त हुयी समझ लेना तू ? समझे !"

अब माणिकदेव की बोलती बन्द हुयी। उसकी हृदय धड़कन बढ़ी। भुयारे में नरसिंह नहीं है तो देवी बोलने वाली नहीं, क्योंकि वह यह जानता ही था कि देवी के नाम पर नरसिंह ही उसके सिखाये अनुसार उत्तर देता था। फलतः भ्रमित, किंकर्त्तव्य विमूढ़ सा, पागल सरीखा देवी के सामने जोर-जोर से गिड़गिड़ाने लगा। बार-बार उन्मत्त सा प्रश्न पूछने लगा। परन्तु उत्तर कौन दे? देवी का मुख बन्द पड़ा था। उसके सिंहासन के नीचे मात्र पोल थी। नरसिंह नहीं फिर उत्तर कहाँ से आता? उसने अपना पूरा धैर्य बटोर, देवी की ओर निहारा, और बड़ी मिन्नत दिखाता बोला "देवी माँ, हे महामाये! कालीमाते! तू बोलती नहीं? अपने दास की लाज नहीं रखती? बोल!"

इतने में पद्मनाभ ने उसकी गर्दन दबोचते हुए कहा, अरे, मूर्ख धूर्त! पाखण्डी, मायाचारी इस प्रकार गला फाड़ कर तू कितना ही चीख इससे तेरा ही गला फटेगा, परन्तु क्या यह पत्थर बोलने वाला है? जब तक भुयारे में नरसिंह नहीं होगा तब तक यह पत्थर क्या बोलने में समर्थ हो सकेगा?

महाराज पद्मनाभ के मुख से यह शब्द सुनते ही माणिकदेव के होश-हवाश उड़ गये। वह समझ गया मेरी सारी पोल-पट्टी, मायाजाल प्रकट हो गया है उसका अहङ्कार चूर-चूर हो गया। अब मेरे जीवन का कोई महत्व नहीं। पाप का परदा पास हो गया, फिर पतित, और अपमानित जीवन से क्या? ऐसा विचार कर,उसने देवी की मूर्ति पर इतने जोर से अपना मस्तक दे मारा कि माथा ही फूट गया।

जीवन की आशा छोड़कर ही उसने अपना शिर अपने आप ही फोड़ लिया। उससे रक्त धारा प्रवाहित हो चली। उसके शिर के धक्के से वह देवी की पोली मूर्ति भी सिंहासन से धड़ाम से गिर कर भूमि में आ पड़ी। पाप का कारण और कार्य दोनों ही मानों एक साथ समाप्त हो गये। ऐसा प्रतीत हो रहा था। परन्तु माणिकदेव का जीवन इतना कच्चा न था।

× × × × ×

अहिंसा की विजय-१३

नारिकदेव के ललाट से, मस्तक से रक्तधारा चालू थी। वह सिसकता अन्तिम श्वासें ले रहा था। उसने सदैव के लिए आत्महत्या कर छुटकारा पाने का प्रयत्न किया था, परन्तु पद्मनाभ ने वैसा नहीं करने दिया।

देवी के मन्दिर में मची गड-बडी, कोलाहल सुनकर बहुत लोग एकत्रित हो गये थे। थोडे ही समय में मन्दिर में होने वाली विचित्र घटना सर्वत्र फैल गयी। यह बलिपूजा का दिन था, यात्रा का अन्तिम दिवस होने से अधिकांश लोग जल्दी ही जाग चुके थे। क्योंकि सूर्योदय के साथ ही बलि-पूजा प्रारम्भ होती थी। पर आज यह विपरीत ही होने वाला हुआ। यह कौन जानता था।

सूर्य की सुनहली किरणें पूर्व दिशा के क्षितिज पर छिटकने-लगी। दिशायें नव शृंगार से सज उठी। परन्तु आज की विजयादशमी की उषा बेला बेचारे निरपराध मूक पशुओं के करुण क्रन्दन की कारण नहीं हुयी। और न उनके रक्त प्रवाह से ही भूप्रदेश रंजित हुआ। सर्वत्र सभी के हृदय में दया की स्रोतस्विनी बह रही थी। सबके अन्तःकरण में वात्सल्य, प्रेम की किरणें फूट रही हैं फिर उन्हें मरण पीडा क्यों होती ? हजारों को जीवनदान प्राप्त हुआ।

पाखण्डी द्वारा निर्मित देवी की पोली मूर्ति भंग हो गई-जमीन पर पड़ी है। पुरोहित के काले कारनामे, मायाजाल के फंदे प्रकट हो गये यह जानकर कितने ही लोगों को महान आनन्द हुआ। बलि देना हमारा धर्म ही है ऐसी मान्यता रखने वाले भावुक-भोले जीवों मनुष्यों को भी इस मिथ्या रहस्योद्घाटन से विरक्ति हो गई। हिंसा पाप है, उन्हें प्रतीत होने लगा। हजारों लोग तो इस रचना को देखने के लिए ही मन्दिर में एकत्रित थे। जिस प्रकार पारसमणि का स्पर्श होते ही क्षणमात्र में लोह सुवर्ण हो जाता है, उसी प्रकार देवी के अंध भक्तों के अन्तःकरण से हिंसारूप कुधर्म-

रूपी लौह अहिंसारूपी पारसमणि से प्रकाशमय हो उठा। अर्थात हिंसक-भावना दया रूप परिणत हो गई। जिन लोगों के हृदय में देवी बलि नहीं चढ़ाने से देवी का कोप होगा—शाप होगा ऐसा भय था वह भयरूपी तमतोम उसी प्रकार नष्ट हो गया जैसे सूर्योदय होते ही रात्रिजन्य सघन अंधकार नष्ट हो जाता है। उन सबको सम्बोधन करते हुए पद्मनाभ राजा निम्न प्रकार अपने उद्‌गार प्रकट करने लगे—

देवी के भक्तो ! आज पर्यन्त हमने अज्ञानवश, बिना विचारे देवी के नाम पर हजारों मूक पशुओं का संहार किया करते थे। स्वार्थी पुरोहित के दंद-फंदों में फँस हम अपने दया धर्म से भ्रष्ट हुए, कुल मर्यादा विहीन हुए। हम सबके पुण्योदय से इस वर्ष यहाँ आचार्य श्री अमरकीर्तिजी का चातुर्मास हुआ। उनके सत्य उपदेश के कारण ही आज से हमें यह स्वर्णिम सन्धि उपलब्ध हुई है। यह शुभदिन हमें प्राप्त हुआ। नहीं तो न जाने कब तक हम सब इस ढोंगी, पुरोहित के मार्ग पर चलते हुए हम सबों की कितनी अधोगति होती ? कौन जाने ? सुख मिलने की आशा में हम कितने अंधे बने रहे। यह उन महात्मा के प्रभाव से ही आज विदित हुआ। इस धूर्त माणिकदेव के कारण ही मैंने इन चम्पानगरी के युवराज को एवं अन्य ८ (आठ) तरुण साथियों को जेल में डाला, इतना नीच काम किया। इन सभी के परिश्रम के फलस्वरूप आज हमें सन्मार्ग लाभ हुआ है। देवी के नाम पर पुरोहित का माहात्म्य और उसका अस्तित्व आज समाप्त हुआ। इस समय हम सब श्री आचार्य महाराज के दर्शनों को चलें और उनका धर्मोपदेशामृत पान कर अहिंसाधर्म धारण करें।

इस प्रकार महाराज का वक्तव्य पूर्ण होते ही सर्व लोगों ने "अहिंसा परमोधर्मः" अहिंसा धर्म की जय, जैनधर्म की जय !" इस प्रकार अनेक बार जयनाद किया। उस जयनाद की प्रतिध्वनि से माणिकदेव की आखें खुली। उसने सबकी ओर दृष्टि फेरते हुए अत्यन्त क्षीण स्वर में कहा—

"मेरे धर्मबन्धुओ ! मुझे क्षमा करो। यहाँ एकत्रित सब लोगों का मैं भयंकर अपराधी हूँ। इस समय मुझ से अधिक कुछ बोला नहीं जाता, मैं स्वयं अपनी आत्मा का भी घातक हूँ, आप मुझे सब क्षमा करें। तथा पुनः एक बार जोर से अहिंसा का जय जय घोष करें, जिससे मेरे प्राण सुख से निकलें, मुझे शान्ति प्राप्त हो। "माणिकदेव के पश्चात्तापयुक्त भाषण सुनते

ही लोगों ने "अहिंसा धर्म की जय" घोष पुन: किया । पुरोहित के चेहरे पर एक सन्तोष की छटा आयी और पुन: सदैव के लिए विलीन हो गई । अर्थात् जयघोष के साथ ही उसके प्राण पखेरु उड गये ।

वहाँ से निकल कर सब लोग श्री अमरकीर्तिजी आचार्य महाराज के पुनीत दर्शनों को गये । अहिंसा की इस प्रचण्ड, महान विजय को देखकर उन्हें कितना आनन्द हुआ कौन कथन कर सकता है ?

"परम पुनीत अहिंसा धर्म की जय"